नवम्बर 2020

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

परम पूज्य दादा भगवान का 113वाँ जन्म जयंती का महोत्सव
ऑनलाइन इन्टरनेट / टी.वी. के माध्यम से लाइव देखिए
दि. 26 से 30 नवम्बर 2020

मिडल ईस्ट और आफ्रिका के महात्माओं के लिए ऑनलाइन शिविर : दि. 2 से 4 अक्तूबर 2020

परम पूज्य दादा भगवान का 113वाँ जन्म जयंती महोत्सव
तथा 'आप्तवाणी-14' पारायण

लाइव टेलिकास्ट देखिए

अरिहंत

चैनल पर...

कार्यक्रम की अधिक जानकारी के लिए पेज नं. 26 देखिए

वर्ष : 16 अंक : 1
अखंड क्रमांक : 181
नवम्बर 2020
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2020
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधरसिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
15 साल
भारत : 1500 रुपये
यू.एस.ए. : 150 डॉलर
यू.के. : 120 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 12 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

'ज्ञानी' सदा मुक्त अभिप्राय व पूर्वग्रह से

संपादकीय

ज्ञानी पुरुष की पहचान एक मात्र उनकी वीतराग वाणी से हो सकती है। अन्य कोई साधन इस काल में नहीं है। पहले के काल में लोग इतने डेवेलप थे कि आँखों में देखकर वीतरागता पहचान जाते थे। ज्ञानी पुरुष इस संसार व्यवहार में एक समय मात्र के लिए भी वीतरागता के बगैर नहीं होते।

अब, ऐसी वीतरागता, वाणी के सिवा और कैसे पहचानी जा सकती है? तब कहते हैं, उनके जीवन की घटनाओं के निष्कर्ष पर से। वीतरागता अर्थात् राग-द्वेष रहित दशा, अभिप्राय मुक्त दशा। प्रस्तुत संकलन में हमें ज्ञानी पुरुष के अभिप्राय रहित जीवन की एक झांकी मिलती है। जिसमें हमें उनकी आत्मिक परिणति का परिचय प्राप्त होता है।

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) कहते हैं कि हमारा मन हमेशा हमारे वश में रहता है, इसलिए अभिप्राय ही नहीं देते न! अंत तक मन बिल्कुल परेशान नहीं करता। भगवान का मन समयवर्ती होता है और हमारा क्षणवर्ती घूमता रहता है। हम में मेरापन नहीं होता, इसलिए कोई झंझट ही नहीं है। हमने जब से आपको देखा और पहचाना तब से फिर कभी हमारा अभिप्राय नहीं बदलता। फिर चाहे आप ऐसे घूमो या वैसे घूमो, हम अंदर की दृष्टि से समझ जाते हैं कि आप अपने कर्म के उदय के अधीन हो। दादा चमड़े की आँखों से दिखाई देने वाले चोर के लिए कभी भी, 'वह चोर है', ऐसा अभिप्राय नहीं होने देते थे। चोर अपने कर्म के उदय के अधीन है। उसका भरा हुआ माल निकलता है, संयोगों के दबाव के कारण करता है। चोरी करते समय उसके भाव चोरी के न भी हों। यही चोर किसी भी समय साहूकार बन सकता है, इस प्रकार की विविध सम्यक् समझ के साथ कि मूल रूप से तो वह खुद शुद्ध स्वरूप ही है, वह बिलीफ बदलने नहीं देते देता।

प्रस्तुत अंक में दादाश्री, खुद अपने आपके लिए अभिप्रायों, चीज़ों के लिए अभिप्रायों और फिर खुद के द्वारा लोगों के लिए दिए गए अभिप्रायों और लोगों द्वारा खुद के लिए दिए गए अभिप्रायों के बारे में, किस प्रकार ज्ञान जागृति सेट की जाए, उसके लिए ज्ञानी की अनुभव सिद्ध समझ प्रदान करते हैं।

जीवन व्यवहार में दादाश्री खुद की दशा का वर्णन करते हुए बताते हैं कि, 'हमें निरंतर स्वभाव जागृति रहती है।' अभिप्रायों के आवरणों से तो जागृति कम हो जाती है। अनंत काल से स्वरूप का विस्मरण हो गया था, आत्मज्ञान के बाद प्रतीति स्वरूप से उसका स्मरण हुआ। अब, महात्माओं को ऐसे अमूल्य जीवन को, इस संसार के छोटी-छोटी बातों में अच्छा-खराब, राग-द्वेष के अभिप्रायों में व्यर्थ खर्च न करके, अभिप्रायों से मुक्त होकर, आत्मा की अनंत समाधि की श्रेणियों का विकास करना चाहिए, यही अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

'ज्ञानी' सदा मुक्त अभिप्राय व पूर्वग्रह से

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

निरंतर सहज, परिणामस्वरूप समाधि

प्रश्नकर्ता : दादा, आप्तसूत्र नं-1183 में लिखा है कि, जिस बारे में जिसके प्रति अभिप्राय बने हुए होते हैं, वे हमें खटकते ही रहते हैं और उन अभिप्रायों को हम छोड़ दें तो सहज हो पाएँगे। यह सूत्र समझाइए न!

दादाश्री : यदि सहज होना है तो अभिप्राय नहीं रहना चाहिए। हम सहज, निरंतर समाधि! कभी भी कोई झंझट नहीं रहती। कोई गाली दे फिर भी झंझट नहीं और जेल में डाले फिर भी झंझट नहीं। मारे, फिर भी झंझट नहीं। कितना मज़ा आता है, नहीं?

ज्ञान से पहले, रिवर्स गाड़ी के बारे में समझ

हमारी बुद्धि बचपन में ऐसी थी, सामने वाले के लिए 'स्पीडी' अभिप्राय बना देती थी। इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि आपका यह सब कैसा चल रहा होगा?

अत: जब हमें ज्ञान नहीं हुआ था न, तब यदि मुझे कोई प्रेजुडिस हो तो मैं क्या करता था? 'बहुत अच्छे इंसान हैं, बहुत अच्छे इंसान हैं। यह तो मेरी ही भूल है।' तब फिर अच्छा दिखाई लगता था।

हमें पहले अभिप्राय रहता था, 'यह खराब है', तो हम तुरंत ही ऐसा कहते, 'बहुत अच्छे हैं'। इतना कहते ही चुप। अभिप्राय अर्थात् क्या? रिवर्स में गाड़ी ली कि बंद। 'बहुत अच्छे हैं' ऐसा कहना चाहिए। फिर भी यदि ना माने तो 'उपकारी है', ऐसा कहना चाहिए। उपकारी कहेंगे तब मानेंगे।

प्लस-माइनस का अनोखा तरीका

एक व्यक्ति मुझसे कहने लगे कि, 'एक बड़े संतपुरुष हैं, उनके यहाँ मैं जाता हूँ, उनके दर्शन करता हूँ। लेकिन मेरे मन में उनके लिए बुरे विचार आते हैं।' मैंने उनसे पूछा, 'आपको कैसे विचार आते हैं?' तब उन्होंने मुझे बताया, 'यह महाराज नालायक है, दुराचारी है, ऐसे विचार आते हैं। मैं उनके चरण भी छूता हूँ।' तब मैंने पूछा, 'आपको ऐसे विचार करना अच्छा लगता है?' तब वे कहने लगे कि, 'अच्छा नहीं लगता फिर भी ऐसे विचार आते हैं, तो उसके लिए क्या कर सकते हैं?' अब, ये कैसे निकलें? आप इसका क्या उपाय करते? यदि आपको ऐसा होता तो आप क्या करते? इसमें दोष किसका है? तो फिर मैंने उनसे कहा कि, 'भाई, जब आपको ऐसे बुरे विचार आए कि यह खराब है, नालायक है, उस वक्त आपको क्या करना है, वह आपको समझाता हूँ।' एक तरफ ऐसे विचार आना, वह आपके हाथ का खेल नहीं है, तो आपके हाथ का खेल क्या है? तब आपको बोलना है कि, 'यह तो बहुत उपकारी है, बहुत उपकारी है'। मन 'खराब है, खराब है' ऐसा बोलता रहेगा और आप 'बहुत उपकारी है, बहुत उपकारी है' ऐसा बोलते रहें तो प्लस-माइनस (जोड़-घटाव) होकर सबकुछ खत्म हो जाएगा।

लोगों के मन में कैसे-कैसे विचार आते हैं! अब, वे विचार उसके खुद के नहीं हैं। वह तो पहले जो अभिप्राय भरे हुए थे वे ही निकल रहे हैं कि 'यह ऐसा ही है'। तो उसके लिए ऐसे विचार आते रहते हैं, सिर्फ अभिप्राय ही है। सही या गलत कुछ भी देखे बगैर ये अभिप्राय आते रहते हैं। क्योंकि अपना भरा हुआ माल ऐसा है। अत: ऐसा माल भेजो ताकि उस माल का कुछ भी न चले और यदि उसका सुनते रहेंगे तो हम पागल हो जाएँगे।

मन, अभिप्रायों का बन्डल

यह मन क्या है, उसका संसार में स्पष्टीकरण हुआ ही नहीं है। हमने थोड़ा-बहुत बताया गया है। मन, वह अभिप्रायों से बना हुआ है। मन क्या है? पहले के अभिप्रायों का बन्डल, वह मन है। और आज नया ज्ञान मिला इसलिए अभिप्राय बदल जाता है। समझ में आया न आपको? मन, वह अपने खुद के ही अभिप्रायों का बन्डल है और वही हमें दिखाता है। लेकिन वे पहले के अभिप्राय हैं, आज के अभिप्राय बदल गए हैं। बदले हैं या नहीं? जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे ज्ञान बदलता जाता है और वैसे-वैसे अभिप्राय भी बदल जाते हैं।

इस मन को मैंने अभिप्राय कहा, तो आपके लिए मन की कीमत खत्म हो गई या नहीं? सिर्फ अभिप्राय ही है, अन्य कुछ है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : सारी तकलीफ तो हमें अपने अभिप्राय ही देते हैं न?

दादाश्री : फिर वे अभिप्राय अपने ही हैं। उनसे क्या टकराना? अत: आपको तय करना है कि भाई, उस दिन ऐसा अभिप्राय बनाया था, उस अनुसार आज बोल रहा है। आज अपना ज्ञान नया है इसलिए हमें वह डिफरन्ट (अलग) लगता है। वहाँ पर मौन रहना है, समभाव से *निकाल* (निपटारा) कर देना है।

आपका ऐसा टकराव नहीं होता?

हर किसी का टकराव होता ही है क्योंकि वह ज्ञान पहले का है, मन के अभिप्राय पहले के हैं। वे अपने ही अभिप्राय हैं। (मन) उनको आज हमारे सामने व्यक्त करता है। आज का ज्ञान बदल गया है। संसार पहले के अभिप्रायों के आधार पर ही चलता है। और बेकार में टकराव होता है।

आज के ज्ञान के अनुसार चलते हैं ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : वे जो अभिप्राय आते हैं और जब वे मन की ग्रंथियाँ शोर करती है, उस समय 'हम' उसके प्रवाह में खिंचे चले जाते हैं न?

दादाश्री : खिंच जाते हो, उतना तो पता चलता है न! ऐसा है, मैं जब 16-17 साल का था, तब एक बार ट्रेन के लिए प्लेटफॉम पर खड़ा था और गाड़ी आई। तो मुझे लगा मैं चल रहा हूँ। 'अरे, यह तो मैं खिंचा', ऐसा कहा। उसी प्रकार जब अभिप्राय आते हैं तब ऐसा लगता है कि 'मैं खिंचा'। उतनी वह अपनी कमज़ोरी है! इसलिए बार-बार, बार-बार, तय करना चाहिए कि 'मैं नहीं खिंच रहा, यह तो गाड़ी जा रही है'। यदि यह समझ में आ जाए तो फिर ऐसा कुछ नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके साथ ऐसा होता है क्या कि आपके आज के अभिप्राय से मन अलग बताए?

दादाश्री : नहीं, अलग नहीं बताता। कभी-कभी अलग बताता है, वह कैसा? यों हाथ ऊँचा करने जैसा। बाकी, नहीं बताता। यदि आपका भी ऐसा हो जाए तो आपका काम निकल जाएगा न!

अंदर से मन क्या कहता है? 'यह खा

लो न!' पहले का ज्ञान कहता है, खा लो न! हम कहते हैं कि 'भाई! इसे नहीं खाना चाहिए। आपका शोर करना बेकार है।' हम अपने आज के ज्ञान के आधार पर चलते हैं, आज के अभिप्राय से चलते हैं।

मन के घुमाए घूमते हो आप

प्रश्नकर्ता : हम पहले का ऐसा मन लेकर आए हैं इसलिए मन ऐसा उल्टा बताता है?

दादाश्री : मन का क्या सवाल है? आपका ठिकाना नहीं? मन तो बेचारा न्युट्रल (तटस्थ) चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : मेरा अर्थात्?

दादाश्री : आप खुद।

प्रश्नकर्ता : अहंकार का?

दादाश्री : आपके अभिप्राय का ठिकाना नहीं है। यदि वह बदल जाए तो आप बदल जाते हो। मन आपको घुमा देता है। जबकि आपको मन को घुमाना चाहिए।

ओपिनियन के द्वंद्वों से मन का सर्जन

आप कल सुबह से अभिप्राय बाँधना छोड़ दो तो मन बंद हो जाएगा। यदि कोई अभिप्राय बाँधोगे तो तुरंत ही आगे के लिए नया मन बन जाएगा। बस, अभिप्राय ही है। मन को बहुत बड़ी चीज़ मानी गई है लेकिन मन, वह अभिप्रायों से बना हुआ है।

हम हर एक बात में जो ओपिनियन (अभिप्राय) देते हैं, उससे द्वंद्वों का सर्जन होता है और द्वंद्वों के सर्जन से मन का सर्जन होता है। यदि ओपिनियन बंद हुआ तो मन (का सर्जन) बंद हो जाएगा। आपको समझ में आ रहा है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या मन इच्छा से नहीं बनता?

दादाश्री : इच्छाओं का और मन का कोई लेना-देना नहीं है। इच्छाएँ सारी ओपिनियन में से ही आई हैं। इच्छाओं में हर्ज नहीं है। आप जलेबी खाओ, उसमें हर्ज नहीं। उससे मन उत्पन्न नहीं होता। आप ओपिनियन दो कि 'अच्छी है' तो मन उत्पन्न हो जाएगा।

ज्ञान से मन को बाँधा जा सकता है

फिर किसी भी तरह से मन को बाँधना पड़ता है, वर्ना मन बेलगाम हो जाएगा। परेशान करेगा, और कुछ नहीं। अपने ज्ञान को ले नहीं जाता लेकिन दबाव डालता रहता है। जो ज्ञान है न, उस ज्ञान के आधार पर आप मन को काबू में, कंट्रोल में रख सकते हो। जो उछल-कूद कर रहा होता है, वह बंद हो जाता है।

मन कभी भी किसी चीज़ से बंध सके ऐसा है ही नहीं, ज्ञान से मन बंधा रहता है। सिर्फ, ज्ञान से ही यह बंधा रह सकता है। बाकी, मन कभी भी कंट्रोल में नहीं रह सकता। वह मिकेनिकल चीज़ है, फिर भी वह ज्ञान से बाँधा जा सकता है। ऐसा करते-करते दिनोंदिन मन इग्ज़ॉस्ट होता जाएगा और अंत में वह खत्म हो जाएगा। उसे नई शक्ति नहीं मिलेगी, पुरानी शक्तियाँ बिखरती जाएँगी। वह मन फिर खत्म हो जाएगा। हमारा हो गया है न! 15-20 सालों से हमारा मन खत्म हो चुका है!

ज्ञानी के मन का डिस्चार्ज अभिप्राय रहित

हमारे अंदर किसी के लिए अभिप्राय नहीं रहते। हमारा मन खाली हो चुका है, इग्ज़ॉस्ट हो चुका है, फिर भी हमारा मन चलता रहता है। जैसे यह पंखा घूमता है न, उसी तरह हमारा मन चलता रहता है। हमारा मन भगवान महावीर

(के मन) जैसा घूमता रहता है। किसी भी जगह चिपकता नहीं है। एक सेकन्ड के लिए भी किसी जगह पर नहीं रुकता। अंत तक मन तो रहता ही है लेकिन मन बिल्कुल परेशान नहीं करता। भगवान का मन समयवर्ती बरतता था और हमारा क्षणवर्ती घूमता रहता है, यानी कि उतना स्थूल है। उसका कारण यह है कि संपूर्ण केवलज्ञान नहीं है इसलिए उतना स्थूल है। अंत में तो पक्का करना ही होगा।

और आपका मन तो जैसे मक्खी गुड़ पर घूमती रहती है न, उसी तरह पंद्रह मिनट, आधा घंटा, एक घंटा, दो घंटे, तक घूमता रहता है। जबकि हमारा मन एक क्षण के लिए भी खड़ा नहीं रहता। इसलिए हम मुक्त रहते हैं। मन भी हमें नहीं बाँधता। आपको मन बाँधता है। यदि रात को साढ़े दस बजे मुवक्किल का विचार आए और वह विचार चलता रहे तो बारह बजा देता है। जिस तरह से हम निर्ग्रंथ हुए हैं, उसी तरह आपको निर्ग्रंथ बना देते हैं। अत: ये जो गांठें अपने मन में पड़ी हुई हैं न, वे फिर विलय हो जाए, ऐसी हैं।

सिर्फ अभिप्राय बदलो

प्रश्नकर्ता : एक जगह पर पढ़ा है कि वैद्य और वेदक, उसमें वेदक का काल अलग और वैद्य का काल अलग। इसलिए 'ज्ञानी पुरुष' वांछना नहीं करते।

दादाश्री : वह किसके जैसा है? आज हमें खीर खाने की इच्छा हुई लेकिन वह नहीं मिली। इसलिए वह इच्छा यों ही खत्म हो गई! मिली नहीं इसलिए। अब, यदि इच्छा उत्पन्न होते ही मिल जाए तो कर्म बंधन होता।

प्रश्नकर्ता : और यदि नहीं मिलता तो खत्म हो जाता है?

दादाश्री : हाँ, खत्म हो जाता है, फिर कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो उस इच्छा से कोई कर्म नहीं?

दादाश्री : नहीं, कोई कर्म नहीं है। हमें सिर्फ अभिप्राय बदल देना चाहिए कि ऐसा नहीं होना चाहिए, तब कर्म नहीं बंधेगा। कर्म तो, यदि खीर खाता है, तो भोगता है, उसकी इच्छा पूर्ण हुई तो कर्म बंध गया, ऐसा कहा जाएगा। और यदि इच्छा होने पर भी खुद अभिप्राय को बदल दे तो कुछ भी नहीं। क्योंकि इच्छा के समय वह चीज़ नहीं मिलती और जब मिलती है तब इच्छा नहीं रहती। जब शादी करनी थी तब शादी करने को नहीं मिली और फिर जब शादी करने को मिल रही थी तब उसकी इच्छा खत्म हो गई। ऐसा होता है या नहीं? शास्त्रकारों ने सूक्ष्म खोज करके यह लिखा है कि ये दोनों बातें खत्म हो जाती हैं।

ज्ञानी कभी इच्छा नहीं करते

प्रश्नकर्ता : 'यह इच्छा करने से आगे फँसाव होगा', ज्ञानी को ऐसा 'ज्ञान प्रकाश' रहता होगा न?

दादाश्री : हाँ। इच्छा खुद अग्नि है। किसी भी प्रकार की इच्छा हुई तो समझो कि हमने कपास में दियासलाई लगा दी। अब जब तक वह बुझ नहीं जाती तब तक उसे दु:ख व परेशानी रहती है। जब वह बुझ जाती है तब फिर उसे संतोष होता है। अर्थात् जब उसकी इच्छा पूर्ण होती है तब उसे संतोष होता है। संतोष अर्थात् क्या? यह जो इच्छा हुई थी अर्थात् लोन पर जो दु:ख लिया था, उससे फिर वह सुख आया, संतोष रूपी। इच्छा हुई यानी पहले वाला 'रीपे' (चुका) करके फिर जो लाभ मिलता है, यह वैसी बात है।

प्रश्नकर्ता : यानी क्या वे खुद ही ऐसा कहते हैं कि, 'इच्छा करूँगा तो कहीं अभी के

अभी व्यवस्थित बदलकर, प्राप्त नहीं हो जाएगा?' क्या इसलिए वे इच्छा नहीं करते?

दादाश्री : नहीं, वे इच्छा करते ही नहीं हैं न! क्योंकि जैसे जलेबी खाने के बाद चाय की इच्छा फीकी पड़ जाती है, 'अब, नहीं पीनी है भाई! रहने दो।' मुँह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार इस संसार के सभी रस खत्म हो जाते हैं। कोई इच्छा ही नहीं रहती न!

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि, 'खुद की इच्छा हो और चीज़ नहीं मिले तो उससे कर्म नहीं बंधता', लेकिन फिर अभिप्राय बदल देना चाहिए न?

दादाश्री : यदि अभिप्राय नहीं बदलेंगे तो अभिप्राय तो रह जाएगा न! जो इच्छा हुई थी, उसका! 'उसमें सुख है' ऐसा माना हुआ था, वह अभिप्राय तो रह गया न! अत: फिर वापस इच्छा उत्पन्न होगी। वह फिर से आकर खड़ी ही रहेगी। इच्छा उत्पन्न होती है तो हम समझ जाते हैं कि इसका अभिप्राय बंधा हुआ है, वह अभिप्राय छोड़ देना चाहिए।

ज्ञानी की दृष्टि अभिप्राय रहित

यदि आपके वे अभिप्राय छूट जाएँगे तो आपका मन बंद हो जाएगा, स्टॉप हो जाएगा। मुझे वर्ल्ड में किसी इंसान के लिए कोई अभिप्राय नहीं रहा। मुझे नालायक कहने वाले के लिए खराब अभिप्राय नहीं और फूल चढ़ाने वाले के लिए अच्छा अभिप्राय नहीं।

हम में किसी प्रकार का अभिप्राय है ही नहीं। हम आपको तत्त्वदृष्टि से ही देखते हैं। अन्य, विवेक की दृष्टि की हमें कोई ज़रूरत नहीं है। आप हमें गाली दो, मारो, फिर भी मैं अन्य दृष्टि से नहीं देखूँगा।

प्रकृति की गड़बड़ को नहीं, भाव को देखो

प्रश्नकर्ता : अब, आप किस तरह से अभिप्राय नहीं बाँधते, वह समझना है। आपका डेवेलपमेन्ट हम से ज़्यादा है फिर भी आपको अभिप्राय कैसे नहीं बंधते?

दादाश्री : मुझे निर्दोष दिखाई देता है। निर्दोष के लिए क्या अभिप्राय?

प्रश्नकर्ता : अब निर्दोष कैसे दिखाई देता है? बाहर रिलेटिव में तो दोषित दिखाई देता है न?

दादाश्री : निर्दोष, वह निर्दोष ही दिखाई देता है, वहाँ फिर किसी प्रकार का अभिप्राय रहा ही नहीं न। मुझे सभी निर्दोष दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन प्रकृति तो दोषित होती है न?

दादाश्री : ये भाई आते हैं, अब यदि उन्होंने मुझे उल्टी-सीधी चिट्ठी लिखी हो फिर भी मुझे वे निरंतर निर्दोष ही दिखाई देंगे।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे? वह जानना है।

दादाश्री : मैं जानता हूँ कि बेचारे की प्रकृति उससे यह बुलवा रही है। वह प्रकृति में तन्मयाकार है। उस समय होम (आत्मा) की बात ही ध्यान में नहीं है। जागृति नहीं है इसीलिए यह सब हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए क्या आप, 'उसे इस तरह से देखते रहते हैं कि उसकी प्रकृति यह गड़बड़ करवा रही है। शुद्धात्मा रूप से वह निर्दोष है?'

दादाश्री : प्रकृति की गड़बड़ को नहीं देखोगे तो बस, बहुत हो गया! मैं उसके सभी भाव समझ जाता हूँ कि यह अभी किस भाव में है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वैसा हम किस तरह से प्राप्त कर सकते हैं।

दादाश्री : आपको तो अभी समय लगेगा न! वह तो, आप इस जन्म में 5-6 साल से ही मेरे पीछे पड़े हो। मैं तो अनंत जन्मों से इसके पीछे पड़ा हुआ था।

प्राकृत गुण हैं पराधीन

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपमें आ जाएँगे तो हमें सब तैयार मिल जाएगा न! हमारे पिता करोड़पति हैं फिर हम क्यों मेहनत करें?

दादाश्री : आपको थोड़े टाइम में प्राप्त हो जाएगा। क्योंकि पहले आप चाहे कितना भी पढ़े हों लेकिन अब आत्मा में रहो न! आपको ऐसी भावना करनी चाहिए कि हमें यह समझने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। और होगी ही, नियम से ही होती है। प्रकृति नहीं देखनी है, प्रकृति पराधीन है। जो पराधीन है, उसमें क्या देखना?

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे अभिप्राय बाँधना बंद करते जाएँगे वैसे-वैसे देखने की यह शक्ति खिलती जाएगी? क्या इसलिए जैसे-जैसे वीतरागता बढ़ती है वैसे-वैसे यह शक्ति बढ़ती है?

दादाश्री : हाँ, वीतरागता से तो सभी शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। जगत् निर्दोष दिखाई देना चाहिए, ऐसा अभिप्राय रखना चाहिए। है निर्दोष लेकिन दोषित दिखाई देता है, ऐसा खुद के प्राकृत गुणों के कारण है। प्राकृत गुणों के दबाव से ही खुद अभिप्राय बनाता है इसलिए दोषित लगता है। और प्राकृत गुण पराधीन हैं।

अभिप्राय नहीं इसलिए मतभेद नहीं

हमने 40 साल तक भागीदार के साथ व्यापार किया लेकिन एक भी मतभेद नहीं हुआ। एक सेकन्ड के लिए भी मतभेद नहीं हुआ।

प्रश्नकर्ता : वह आश्चर्य कहा जाएगा। वर्ना, भागीदार हो तो कुछ न कुछ, कभी न कभी...

दादाश्री : नहीं, एक सेकन्ड के लिए भी मतभेद नहीं हुआ। मतभेद कब तक रहते हैं? जब तक सामने वाले के लिए अभिप्राय हैं तब तक मतभेद हैं! किसी चीज़ के लिए अभिप्राय या सामने वाले व्यक्ति के लिए अभिप्राय, जब तक कुछ भी अभिप्राय है तब तक मतभेद है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि हर एक के अभिप्राय अलग-अलग होते हैं न!

दादाश्री : हाँ। यानी कि हमें अभिप्राय नहीं हैं इसलिए मतभेद नहीं हैं। हमें... ये भाई बोलें तो हम तुरंत समझ जाते हैं कि 'ये भाई अपने व्यू पोइन्ट से कह रहे हैं।' हमें अभिप्राय नहीं हैं इसलिए परेशानी नहीं होती। कभी न कभी ऐसा होना है! यानी कि आपको अभी तक अभिप्राय हैं।

सभी के अभिप्राय लेकर, बने हैं 'ज्ञानी'

हमें पहले अपना मत नहीं रखना चाहिए। सामने वाले से पूछना चाहिए कि इसके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं? अगर सामने वाला अपनी बात पर अड़ा रहे तो मैं अपनी बात छोड़ देता हूँ। हमें तो यही देखना है कि कैसे भी करके सामने वाले को दु:ख न हो। अपना अभिप्राय सामने वाले पर नहीं थोपना है। हमें सामने वाले का अभिप्राय लेना चाहिए। हम तो सभी के अभिप्राय लेकर 'ज्ञानी' बने हैं। यदि मैं अपना अभिप्राय किसी पर थोपने जाऊँगा तो मैं ही कमज़ोर पड़ जाऊँगा। अपने अभिप्राय से किसी को दु:ख नहीं होना चाहिए।

यदि वह खींचे तो उसके मत को सही ठहराकर चलते हैं, अत: फिर मतभेद होना रहा ही कहाँ? वह कहे, 'नहीं ऐसा', तो, 'अच्छा वैसा, चलो'। जब तक हमारा चला तब तक चला। वर्ना, हमारा सिक्का खोटा! वह तो, हीरा बा के सामने खोटा सिक्का ही थे न!

गेस्ट की तरह जीने में वास्तविक आनंद

'हमारा *चलण* (खुद के अनुसार सब को चलाना) ही नहीं है न घर में', ऐसा साफ-साफ कह दिया था। अत: फिर कोई चाय माँगता ही नहीं है न! और यदि हीरा बा को चाय पिलानी हो तो पिलाए और खाना खिलाना हो तो खिलाए, उसमें हमें क्या? न लेना, न देना। और हीरा बा से कहता था, 'हम आपके गेस्ट, अनइन्वाइटेड गेस्ट' (बिन बुलाए मेहमान)! यदि घर हमारा हो तो हमें मेहमानों को संभालना पड़े न! तब फिर हमें ऐसा कहना पड़ता, 'थोड़ा हलवा बनाना, फलाना बनाना।' और जब *चलण* ही नहीं रहा तो फिर वे हलवा खिलाएँ या लड्डू खिलाएँ या रोटियाँ खिलाएँ, हमें उसमें झंझट ही नहीं है न! सचमुच में हमें दिल से भी ऐसा नहीं था। दिल से तो कब का ही यह सब छोड़ दिया। यह दखल चाहिए ही नहीं! पूरा राज दें फिर भी हमारे किसी काम का नहीं, ऐसा कितने ही समय से सेट हो गया था। यह हमारा भीतर का सारा वैभव! कितना अच्छा वैभव!

प्रश्नकर्ता : यह बात सही है, यदि एक बार ऐसा समझ में आ जाए कि *चलण* नहीं रखना है, तो बहुत सा छुटकारा हो जाएगा।

दादाश्री : तभी छुटकारा होगा, वर्ना छुटकारा नहीं होगा। यदि ज्ञानी पुरुष के एक-एक अभिप्राय को लिया जाए तो छुटकारा ही है। उनका एक-एक अभिप्राय ऐसा होता है कि यहाँ संसार में रहकर ही मुक्त रह सकते हैं! जैसे कि खोटा सिक्का!

जो समझदार है, वही पलटता है

हम सभी को सीखना क्या है, कि मतभेद नहीं पड़ें, ऐसा बर्ताव करें। मतभेद पड़ा कि आपकी ही भूल है, आपकी ही कमज़ोरी है। सामने वाले को हम से समाधान होना ही चाहिए। सामने वाले के समाधान की ज़िम्मेदारी अपने सिर पर है।

आपसे सामने वाले का समाधान नहीं हो तो आप क्या समझते हो? सामने वाले में कम समझ है, ऐसा ही समझते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आपका विवाद हो जाए, उस समय बात को घुमा-फिराकर भी 'उसे असमाधान न रहे', आपको उस तरह से काम लेना चाहिए। यदि आप समझदार हो तो आप पलट जाओ और समाधान करवाओ। यदि आप नहीं पलटते तो आप समझदार नहीं हो। बाकी, सामने वाला तो पलटेगा नहीं। इसलिए मैं किसी को भी नहीं पलटता। मैं ही उससे कहता हूँ कि, 'भाई, मैं ही पलट जाऊँगा।' हमें सीधा रखना है।

ग्यारह बजे आप मुझे कहो कि, 'आपको भोजन कर लेना पड़ेगा।' मैं कहूँ कि 'थोड़ी देर बाद भोजन करूँ तो नहीं चलेगा?' तब आप कहो कि, 'नहीं, भोजन कर लीजिए, तो काम पूरा हो।' तो मैं तुरंत ही भोजन करने बैठ जाऊँगा। मैं आपके साथ 'एडजस्ट' हो जाऊँगा।

'ज्ञानी' रहते हैं 'पोटली की तरह'

ऐसा है न, मैं तो सभी के अधीन रहता हूँ, इसका क्या कारण है? मुझ में *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपन) नहीं है। इसलिए मैं तो बिल्कुल संयोगों के अधीन रहता हूँ। मैं तो आपके भी अधीन रहता हूँ, तो भला संयोगों के अधीन तो रहूँगा ही न! अधीनता अर्थात् संपूर्णत: निर्अहंकारिता! अधीनता तो बहुत अच्छी चीज़ है। जो हमारे साथ हैं, वे जैसा कहें हमें वैसा करना है। हमारा कोई अभिप्राय नहीं होता। हमें ऐसा लगे कि अभी उनकी बात में कमी है तब हम उनसे कहते हैं कि, 'भाई, ऐसा करो।' उसके बाद हम अधीन ही रहते हैं निरंतर।

अत: हमें तो मुंबई या बड़ौदा कुछ लोग

पूछते हैं कि, 'दादा आप जल्दी आए होते तो अच्छा था।' ऐसा सब कहते हैं। तब मैंने कहा, 'पोटली की तरह मुझे ले आते हैं तब यहाँ आता हूँ और पोटली की तरह ले जाते हैं तब जाता हूँ।' तब फिर वे समझ जाते हैं। फिर कहते हैं कि, 'इसे पोटली की तरह कहते हैं?' अरे, यह पोटली ही है न! नहीं तो और क्या है यह? अंदर भगवान हैं संपूर्ण! लेकिन बाहर तो पोटली ही है न! इसलिए *पोतापणुं* रहा ही नहीं न!

मुझे जहाँ उठाकर ले जाएँ वहाँ जाते हैं हम। कई चीज़ें हमें नहीं खानी हो तो भी खाते हैं, नहीं पीनी हो फिर भी पीते हैं, न चाहते हुए भी सब करते हैं हम। और इसमें किसी का चल भी नहीं सकता। अनिवार्य है न! आपके 'एन्करिज़मेन्ट'(प्रोत्साहन) के लिए हम आपकी चाय पीते हैं। अगर वह चाय बहुत कड़क हो, प्रकृति को माफिक न आए ऐसी हो फिर भी, आपको आनंद होता है न, कि 'दादा' ने मेरी चाय पी, तो इसलिए हम वह चाय पी लेते हैं।

यह इतने दिनों की यात्रा की है, इसमें भी सभी के कहे अनुसार ही रहे। वे कहें कि 'यहाँ रहना है।' तब मैं कहता हूँ कि, 'हाँ, रहना है।' वे कहें कि 'यहाँ से उठिए अब' तो वैसा। हम में 'हमारापन' नहीं होता, 'हमारापन' का उन्मूलन हो गया है। बहुत दिनों तक 'हमारापन' किया है। हम में तो पहले से ही ममता बहुत कम थी, इसलिए झंझट ही नहीं थी कोई।

'खुद का' ज़रा सा भी अभिप्राय अंदर आए तो समाधि टूट जाती है। '*पोतापणुं*' ही खत्म कर देना है। 'ऐसा तो करना ही चाहिए, ऐसा तो करना ही नहीं चाहिए।' ऐसा अभिप्राय रखने से समाधि टूट जाती है! जहाँ पर ज़रा सा '*पोतापणुं*' है, वह सारा दखल है!

परसत्ता समझकर नहीं बनाते अभिप्राय

एक बार हमारे खाते में 'ए.एम.पटेल' के नाम पर लगभग पंद्रह हज़ार की रकम रही होगी। बड़ौदा में एक मकान बेचा था और वह रकम मकान के नाम से नहीं लिखी और ऐसे ही अंबालाल मूलजी भाई के खाते में जमा कर दी। तो उसे इन्कम टैक्स वाले ने पकड़ लिया कि इस रकम का इन्कम टैक्स भरो। यह हमें मान्य नहीं है। फिर हमने प्रमाण दिखाया कि 'भाई, यह मकान बेचा था।' तब वे कहने लगे कि 'वह हमें मान्य नहीं है। इसमें किसी प्रकार का आपका विवरण नहीं है।' उसके बाद उसने चार हज़ार रूपये का टैक्स लगाया। वह इन्कम टैक्स एक्सपर्ट क्या कहने लगा कि, 'साहब, यह कौन है अंबालाल मूलजी भाई, वह आपको पता है? मैं उनकी आरती में दर्शन करने जाता हूँ, तो आप ज़रा सोचो तो सही!' तब साहब ने कहा, 'नहीं, वहाँ मैं भी आपके साथ दर्शन करने आऊँगा।' मैंने इन्कम टैक्स एक्सपर्ट को मना किया कि, 'जाने दो न, ऐसे प्रयत्न करने की ज़रूरत नहीं है। यह हिसाब है। इसमें इस बेचारे का गुनाह नहीं है। उसका क्या सामर्थ्य बेचारे का? यदि उसे अपनी नौकरी बदलनी हो तो नहीं बदल सकता, वह शोर मचाता है कि मुझे बदली करवानी है। लेकिन ठिकाना नहीं पड़ता। पत्नी वहाँ और मैं यहाँ!' हाथ में सारी सत्ता है, फिर भी! यह तो सत्ता विहीन प्रदेश है। वहाँ बेकार में आरोप लगाएँ, अभिप्राय बाँधें कि, 'यह साहब कितना खराब है, यूज़लेस फेलो (बेकार इंसान) है।' लो! ऐसा कहना चाहिए क्या? उस इन्कम टैक्स एक्सपर्टस से मैंने कहा कि 'यह माथापच्ची क्यों कर रहे हो?' तब वह कहने लगा 'नहीं, वह तो बताना ही चाहिए कि ये दर्शन करने योग्य पुरुष हैं।' बल्कि साहब ने

क्या कहा कि 'मैं दर्शन करने आऊँगा लेकिन मुझे तो यह करना ही पड़ेगा।' मेरा फर्ज पूरा करना पड़ेगा।' अत: हम तो तुरंत मान लेते हैं। मैंने कहा कि यह कुछ पिछला भरने में भूल हो गई ऐसा लगता है, कम रकम भरी गई है, उसका यह दंड आया है! यह सब भूल का ही परिणाम है। कोई नया कुछ कर सके, ऐसा है ही नहीं। उसका खुद, मैंने अपने आप हर एक बात में अनुभव लिया है।

जहाँ अभिप्राय का अभाव वहाँ आनंद

खुद का कुछ नहीं रहना चाहिए। खुद की कोई चीज़ नहीं रहनी चाहिए। खुद का अभिप्राय उसी को संसार कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद का अभिप्राय नहीं रहना चाहिए?

दादाश्री : वही संसार है। इसीलिए इस संसार में चक्कर लगाने पड़ते हैं। यह मेरा खुद का *पोतापणुं* ही नहीं रहा। वहाँ फिर मेरा अभिप्राय कहाँ से रहेगा? समझ में आए ऐसी बात है या कठिन है? कैसा मेल और आनंद है? ज़रा सा भी कभी बदलाव देखा क्या? क्या लगता है आपको? एक बाल के बराबर भी बदलाव देखा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : नहीं देखा है। नहीं! फिर कहने की ज़रूरत है क्या?

जहाँ कषाय वहाँ अभिप्राय

वीतराग को अभिप्राय नहीं होता। वीतराग बोलते तो हैं कि, 'इस भाई का स्वभाव ठीक नहीं है, इस भाई का स्वभाव अच्छा है।' बोलते तो हैं लेकिन अभिप्राय नहीं होता। व्यवहार में बोलना पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् कषाय की वजह से अभिप्राय देते हैं?

दादाश्री : कषाय है तभी अभिप्राय होता है। मीठा कषाय हो तो मीठा अभिप्राय होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वीतराग होने के बावजूद भी अभिप्राय जैसी बात कह सकते हैं क्या? यानी बातें लगती हैं अभिप्राय जैसी कि 'यह अच्छा है, यह ठीक नहीं है', फिर भी वीतराग रह सकते हैं।

दादाश्री : फिर भी अभिप्राय नहीं रहते। अभिप्राय तो कषायी को रहते हैं। उसे प्रेजुडिस कहते हैं। कल यदि कोई चोरी करके गया हो और आज फिर वह व्यक्ति आए तब उसके मन में ऐसा होता है कि, 'जेब संभालना'। 'वह चोर है', ऐसा मानता है। तब भगवान कहते हैं कि 'भाई, कल उसका उदय वैसा था, आज उदय अलग प्रकार का हो सकता है।'

प्रश्नकर्ता : अत: वीतराग की दृष्टि ही ऐसी होती है कि जिससे अभिप्राय नहीं बनते।

दादाश्री : अभिप्राय तो होते ही नहीं हैं न! अभिप्राय तो, ये कषाय देते हैं। पूरा संसार कषाय वाला है इसीलिए अभिप्राय दे देता है, कि 'यह खराब है और यह अच्छा है, ऐसा।'

प्रश्नकर्ता : जब दृष्टि में भेद ही न रहे कि 'यह अच्छा और यह खराब', तब उसे अभिप्राय रहित हुआ, ऐसा कहा जाएगा न? तब कहा जाएगा कि वीतराग बन गया?

दादाश्री : जब राग-द्वेष नहीं होते तब वीतराग हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अच्छा-बुरा हो फिर भी राग-द्वेष न हो ऐसा हो सकता है?

दादाश्री : वे अच्छे को अच्छा कहते हैं,

बुरे को बुरा कहते हैं। 'चोर का चोरी करना खराब है', ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर उनकी निश्चिय की दृष्टि में चोरी करना खराब नहीं है?

दादाश्री : निश्चय की दृष्टि से नहीं कहते, व्यवहार की दृष्टि से कहते हैं। ड्रामेटिक (नाटकीय) कहते हैं। 'देख तू चोरी कर रहा है, वह खराब है। इसका फल कड़वा आएगा।' यह दान देता है, उसका फल अच्छा आएगा।' वे ऐसा कहते हैं। लेकिन अभिप्राय नहीं होता कि, 'यह चोर है'।

ज्ञानी रहते हैं सुपरफ्लुअस

प्रश्नकर्ता : 'यह बहुत नोबल (भला) इंसान है', आपने ऐसा कहा तो इसे अभिप्राय देना नहीं कहेंगे?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यह समझाने के लिए ही ऐसा कहता हूँ। उसमें हमारा अभिप्राय नहीं रहता। यदि ऐसा अभिप्राय रहेगा तो फिर हमें उसके प्रति राग रहेगा। वह अभिप्राय नहीं है। यों समझाने के लिए कहना पड़ता है कि 'यह व्यक्ति नोबल है।'

हमें अभिप्राय नहीं रहते। हम आप सभी से ऐसा सब कहते तो हैं! नहीं? कल सभी को कह ही रहा था न कि, 'इन्हें कुछ कहना नहीं आया, लोगों को समझाना नहीं आता।' सब को एक साथ कह रहा था लेकिन उसमें हमारा अभिप्राय ऐसा नहीं रहता। हम सभी कुछ कहते हैं। जैसा है वैसा कह ज़रूर देते हैं लेकिन उसमें अभिप्राय नहीं होता। यदि ऐसा अभिप्राय हो जाए तो फिर वापस हमारा बिगड़ेगा, मेरे कपड़े गंदे हो जाएँगे। मैं अपने कपड़े क्यों गंदे होने दूँ?

आपको दूसरों के जितने दोष दिखाई देते हैं, उससे ज़्यादा तो हमें दिखाई देते हैं। क्यों?

प्रश्नकर्ता : जागृति ज़्यादा है न!

दादाश्री : सभी, छोटे-छोटे दोष सभी दिखाई देते हैं, लेकिन मैं उनसे अलग रहता हूँ न!

प्रश्नकर्ता : किस तरह अलग रहते हैं, दादा?

दादाश्री : अभिप्राय नहीं देता इसलिए अलग ही रहता हूँ न! एक तरफ दोष दिखाई देते हैं और वे किसके दोष हैं, वह भी समझ में आता है। अत: आपका दोष नहीं मानता, चंदूभाई का दोष है, ऐसा मानता हूँ। उस समय इतनी ज़्यादा जागृति होती है। आपके दोष तो मुझे हर पल दिखाई देते हैं, सभी के दिखाई देते हैं, लेकिन उससे मुझे क्या लेना-देना? आपको अपने दोषों का *निकाल* (निपटारा) करना है, मुझे क्या करना है?

'हम' सिर्फ सावधान कर सकते हैं। फिर यदि आपको टेढ़ा चलना हो तो उसका कुछ नहीं कर सकते! वह तो, भगवान महावीर के समय में भी उनका शिष्य गोशाला उल्टा चला था। गोशाला भगवान के सामने व्याख्यान देते हुए कहता था, 'मैं भी महावीर ही हूँ।' 'इसमें भगवान महावीर क्या करते?' उन दिनों ऐसे लोग होते थे, तो आज इनमें से दो लोग ऐसे निकलें तो उन्हें हम कुछ नहीं कह सकते न! और ऐसे हों तो अच्छा ही है न!

मैं 'सुपरफ्लुअस' (उपलक) रहता हूँ। यहाँ कितने सारे महात्मा हैं, उन सभी की हकीकत मैं जानता हूँ लेकिन मैं उसमें कहाँ दखल करूँ? हम साधारण तौर पर डाँटते तो हैं, 'तू बेअक्ल है, मूर्ख है'। ऐसा सब कहते हैं लेकिन वह सारा सुपरफ्लुअस। शायद कभी एक लगा दें फिर भी सुपरफ्लुअस।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस सुपरफ्लुअस का असर भी उसे होता है न?

दादाश्री : नहीं, कुछ नहीं।

'ज्ञानी पुरुष' के दिव्यकर्म

शास्त्रकारों ने ज्ञानी के प्रत्येक कर्म को दिव्यकर्म कहा है, क्योंकि स्वयं संपूर्ण निर्‌अहंकारी, संपूर्ण अकर्तापद में बैठे हुए होते हैं, इसलिए वीतराग कहलाते हैं। इस काल में संपूर्ण वीतराग नहीं होते हैं। हम वीतराग हैं परंतु संपूर्ण नहीं हैं। हम जगत् के तमाम जीवों के साथ वीतराग हैं, सिर्फ हमारे जगत् कल्याण करने के कर्म के प्रति ही हमें राग रहता है। जगत् कल्याण करने की खटपट के लिए हमें थोड़ा राग रह गया है। वह राग भी कर्म खपाने जितना ही है। वर्ना 'हमें' तो हमारा मोक्ष निरंतर बरतता ही रहता है।

ज्ञानी को निरंतर समता

यदि हम ऐसा अभिप्राय बना लें कि, 'ये भाई तो ऐसे हैं', तो जब वे भाई यहाँ पर आएँगे तब वे हमारा मन बदला हुआ देखेंगे। हम में उन्हें समता नहीं दिखाई देगी, तो मुझे देखने से पहले ही वह समझ जाते हैं कि दादा में कुछ बदलाव लग रहा है। यानी अभिप्राय से ऐसा सब असर होता है और यदि अभिप्राय छोड़ दिया तो कुछ भी नहीं। हमें किसी के प्रति भी अभिप्राय नहीं है इसलिए हमें निरंतर समता रहती है।

हमारे साथ सभी का अलग-अलग वर्तन रहता है लेकिन हमें अभिप्राय नहीं रहता। हम जानते हैं कि यह तो ऐसा ही होगा। कलियुग में सास ऐसी ही होगी, ऐसा बहू जानती होगी न? या नहीं जानती होगी? कलियुग है तो ऐसा ही होगा। इसलिए उसमें क्या अभिप्राय बाँधना?

प्रतीति में संपूर्ण निर्दोष दृष्टि

प्रश्नकर्ता : आपको तो कोई मनुष्य दोषित लगता ही नहीं न, निश्चय से!

दादाश्री : दोषित नहीं लगता, क्योंकि वास्तव में ऐसा होता नहीं है। यह जो दोषित लगता है न वह दोषित दृष्टि के कारण दोषित लगता है! यदि आपकी दृष्टि निर्दोष हो जाए तो दोषित लगेगा ही नहीं कोई!

अब ऐसा जो कहना पड़ता है न, कि 'यह उचित नहीं है'। ऐसा कहा, वहाँ स्याद्‌वाद चूक जाते हैं। फिर भी उचित बनाने के लिए ऐसा कहना पड़ता है। लेकिन भगवान तो क्या कहते हैं कि 'यह भी उचित है, वह भी उचित है, चोर ने चोरी की, वह भी उचित है, इनकी जेब कट गई, वह भी उचित है। भगवान तो वीतराग हैं, दखलंदाज़ी करते नहीं न! खटपट करते नहीं न! और हमें तो सभी में खटपट। हमारे हिस्से में ऐसी खटपट आई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह भी हमारे रोग निकालने के लिए न?

दादाश्री : हाँ, वह तो लोगों को तैयार करने के लिए। इसमें हेतु अच्छा है और हमारा हेतु हमारे खुद के लिए नहीं है, सभी के लिए है। साथ ही हमारी प्रतीति में है कि 'दोषित नहीं है'। प्रतीति में निर्दोष है। वह प्रतीति पूरी ही बदली हुई है। अर्थात् 'निर्दोष है' ऐसा मानकर मैं यह बोलता हूँ। लेकिन नहीं कहना चाहिए। एक शब्द भी नहीं कहना चाहिए। ऐसा गलत शब्द भी क्यों बोले? फिर ऐसे भारी शब्द क्यों बोले? इसलिए प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

पूर्व के अभिप्रायों को प्रतिक्रमण से असहमत

प्रश्नकर्ता : आप तो जब बोलते हैं तब भी अलग ही रहते हैं, तो फिर प्रतिक्रमण किसलिए?

दादाश्री : अलग हैं, इसलिए प्रतिक्रमण 'मुझे' नहीं करने हैं। यह अंदर ही अंदर, जो करते हैं न, जो बोलते हैं न, उसे ही कहना है,

कि 'तुम प्रतिक्रमण कर लो'। आपके लिए भी ऐसा ही है। यह जो प्रतिक्रमण है, वह 'आपको' नहीं करने हैं, 'चंदूभाई' से कह देना है। 'आपको' प्रतिक्रमण नहीं करने हैं। जिसने अतिक्रमण किया न, उसी को प्रतिक्रमण करना है।

प्रश्नकर्ता : तो भूल का प्रतिक्रमण कैसे करते हैं?

दादाश्री : फिर प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। भूल, ज्ञान से संबंधित नहीं होती है। जब कोई स्याद्वाद के विरोध में जाता हो तब उस व्यक्ति पर सख्ती हो जाती है। यदि स्याद्वाद हो तो सख्ती नहीं होनी चाहिए। बिल्कुल, संपूर्ण स्याद्वाद! यह तो स्याद्वाद कहलाता है, लेकिन संपूर्ण स्याद्वाद नहीं कह सकते न! जब केवलज्ञान हो जाएगा तब संपूर्ण स्याद्वाद!

हमारा ज्ञान अविरोधाभासी है लेकिन वाणी (संपूर्ण) स्याद्वाद नहीं है। इसमें कोई लपेट में आ जाता है और तीर्थंकरों की वाणी में कोई लपेट में नहीं आता है। वह तो संपूर्ण स्याद्वाद! वे लपेट में लिए बिना बोलते हैं। बातें तो वे वैसी ही बोलते हैं, लेकिन लपेट में लिए बिना।

हमें प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं क्योंकि कभी-कभार हमारे मुँह से ऐसी बातें निकल जाती हैं। देखो न, हमारा उतना अनिवार्य है। कभी-कभी आचार्य के बारे में बोला जाता है! बाकी, किसी के भी बारे में नहीं कहना चाहिए। ऐसा जानते हैं कि 'इस दुनिया में सभी निर्दोष हैं'। फिर किसी के बारे में कहना चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं कहना चाहिए।

दादाश्री : ऐसी ही वाणी निकलती है और बाद में तुरंत ही उसके लिए हमारे प्रतिक्रमण चलते रहते हैं। अरे, देखो न, कैसी दुनिया है!

जो वाणी बोलते हैं, उस पर ही अलग अभिप्राय। 'यह जगत् कैसा है?' जो वाणी बोलते हैं, उस पर अभिप्राय कैसा है कि 'यह ऐसा नहीं है, यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए'। लेकिन यह दुनिया कैसी चल रही है, उसके साथ जागृति में रहकर चलते हैं।

बोलते हैं और साथ ही ऐसी जागृति रहती है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। क्योंकि हमने पूरे जगत् को निर्दोष देखा है। सिर्फ अनुभव में ही नहीं आया है। वह अनुभव में किसलिए नहीं आया? तो यह जो वाणी है, वह दखल करती है।

प्रश्नकर्ता : दखल करती है, फिर भी आपकी तो निरंतर जागृति है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन जागृति होने के बावजूद भी जब तक ऐसी वाणी बंद नहीं होगी, तब तक पूर्ण पद तो मिल ही नहीं सकता न! यह वाणी कैसी निकलती है? ऐसी जोशीली!

अब यह वाणी कब भरी थी? जब जगत् निर्दोष देखा नहीं था, उस वक्त भरी थी कि 'ये, ये ऐसे दोषित, ऐसा क्यों करते हैं? ऐसा क्यों करते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए, यह जो भरा था, वह आज निकल रहा है। तब के अभिप्राय आज निकल रहे हैं और आज उस अभिप्राय से हम सहमत नहीं हैं।

नहीं जमा करने चाहिए बदलते हुए सर्टिफिकेट

अब तो दृष्टि बदल गई न! दृष्टि हमेशा बदलती रहती है। जैसे-जैसे दृष्टि बदलती है, वैसे-वैसे अभिप्राय बदलते जाते हैं और सम्यक् दृष्टि में आने के बाद एक ही लाइन पर आ जाते हैं, मेन लाइन पर। मिथ्या दृष्टि बदलती ही रहती है, निरंतर बदलती रहती है। अभिप्राय बदलते रहते हैं, चलते ही रहते हैं। आज पिता बेटे से कहता है

'तेरे जैसा बेटा किसी को नहीं मिला होगा।' और डेढ़ घंटे के बाद, उसके हाथ से दो-चार, कप व रकाबी गिर जाएँ तब, 'तू बहुत ही नालायक है', ऐसा कहता है। अत: हम पिताजी से कहते हैं, 'नमस्कार है आपको। आपके अभिप्राय को भी नमस्कार है, आपके सर्टिफिकेट को भी नमस्कार है।' उसके बजाय कॉलेज़ का सर्टिफिकेट अच्छा, वह 50-60 साल तक, 100 साल तक भी कोई झंझट नहीं। कॉलेज़ का सर्टिफिकेट नहीं बदलता न! जबकि इनका सर्टिफिकेट तो डेढ़-डेढ़ घंटे में बदल जाता है। अत: लोग मुझे भी सर्टिफिकेट देते थे, मैं मेट्रिक फेल था, उसकी लोग निंदा करते थे। तो मैं उनके सर्टिफिकेट पर ध्यान नहीं देता था। इसके लिए क्या सर्टिफिकेट लेना? घड़ी भर में अच्छा कहते हैं, घड़ी भर में खराब कहते। अत: फिर जब अच्छा कहते थे तब उस पर भी मैं ध्यान नहीं देता था। इनके सर्टिफिकेट का ठिकाना ही नहीं है फिर उनका क्या करना?

प्रश्नकर्ता : जो 'आपको अच्छा कहता था' उसके सर्टिफिकेट पर आप किस ज्ञान प्रकाश से ध्यान नहीं देते थे?

दादाश्री : घड़ी भर बाद वे वापस उल्टा कहेंगे ही, उसके बजाय यह चीज़ ही गलत है। उसके बजाय कॉलेज़ के सर्टिफिकेट अच्छे। इनके सर्टिफिकेट पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इसलिए उस सर्टिफिकेट पर मैंने ध्यान नहीं दिया। जब कुछ अनुकूल आया, तब अच्छा और यदि हम कहें, कि 'मेरी घड़ी गुम हो गई है' तब खराब! अरे, यह मेरी जो पहले की पूँजी थी, वह चली गई क्या? सारी पूँजी चली गई। 'बहुत अच्छा है, बहुत समझदार है, अक्ल वाला है,' पहले तो ऐसा था, और अब वह पूँजी चली गई! उस पूँजी में से माइनस करके बोल न! नहीं, लेकिन इतना सामर्थ्य ही नहीं है न! वह तो फटकारने ही लगते हैं। तो रहने दो आपके अभिप्राय! उसके बजाय कॉलेज़ के दिए हुए अभिप्राय क्या गलत है! आपको बी.ए., एल.एल.बी. का अभिप्राय मिला, वह सर्टिफिकेट कैसा टिका! और यह अभिप्राय टिकता ही नहीं न! वह अभिप्राय अंत तक चला न!

प्रश्नकर्ता : उस सर्टिफिकेट के, काग़ज़ पर से हस्ताक्षर मिट गए हैं, दादा।

दादाश्री : भले ही मिट गए लेकिन फिर भी लोग अभी उस अभिप्राय को एक्सेप्ट करते हैं। लेकिन ये जो लोग अभिप्राय देते हैं न, कि 'चंदूभाई बहुत अच्छे हैं, बहुत अच्छे।' परंतु दो या तीन घंटे के बाद कुछ नए ही प्रकार का कहते हैं! आपको बोला है किसी ने ऐसा?

प्रश्नकर्ता : बहुत-बहुत, इन व्यवहारिक संबंधों में ऐसा ही होता है।

दादाश्री : लेकिन मैं तो रकमों को माइनस करके बोलता हूँ। जब मुझे ज्ञान नहीं हुआ था तब मैं इन रकमों को माइनस करके बोलता था। मेरे पास जो व्यवहारिक स्टॉक था, उसमें से माइनस करके बोलता था। एक बार अभिप्राय देने के बाद उसे बदल कैसे सकते हैं? जबकि मुझे तो लोग कुछ भी कह देते थे! इसलिए फिर मैंने इन लोगों के दिए हुए अभिप्राय ही निकाल दिए हैं।

प्रश्नकर्ता : फिर आप क्या करते थे, दादा? उनके अभिप्राय को जमा नहीं करते थे?

दादाश्री : बिल्कुल भी जमा नहीं करता था! जिनका कोई ठिकाना नहीं, किसी प्रकार की एक्ज़ेक्टनेस ही नहीं, उनके अभिप्राय को क्या जमा करना? घड़ी में कहेगा, 'बहुत अच्छा है' और घड़ी मे कहेगा 'नालायक है!' उसके बजाय वह अभिप्राय ही न लें तो क्या हर्ज है? हमें कहाँ उनके अभिप्रायों से जीना है? फिर भी वे अभिप्राय तो देते ही रहेंगे लेकिन हमें जमा

नहीं करना है। बहुत खुश हो जाएँ फिर भी हमें जमा नहीं करना है। हमें समझ जाना हैं कि, कुछ समय बाद वापस धक्का मारेंगे ही!

प्रश्नकर्ता : हमारी वकील की भाषा में हम 'नोटेड' कहते हैं। अत: जमा नहीं करते। नोटेड अर्थात् 'यस-नो' नहीं, जमा भी नहीं और उधार भी नहीं।

दादाश्री : वह ठीक है। बेकार में लेते रहें और जमा करते रहें! उसे किस दुकान में रखें? अलमारियाँ कितनी हैं अपने पास?

प्रश्नकर्ता : मानपत्र देते हैं, उसे भी लोग इकट्ठा करके रखते हैं।

दादाश्री : मानपत्र लेने वाले लेते ही हैं न, लोग देते भी हैं। वे मन में खुश हो जाते हैं! क्या देना, कुछ ठिकाना ही नहीं है इनका।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अभिप्राय देने का कोई ठिकाना ही नहीं है।

दादाश्री : नहीं-नहीं! कोई ठिकाना ही नहीं है। क्योंकि लोगों के हाथ में सत्ता ही नहीं है न! सिर्फ इतना ही है कि सत्ता मान बैठे हैं। यह सब तो उदयकर्म करवाता है। किसी के हाथ में सत्ता ही नहीं है न! यह सत्ता के बगैर चल रहा है। बोलते हैं, 'तुझमें अक्ल नहीं है।' वह अभिप्राय दिया। और 'तेरे जैसा कोई इंसान नहीं', वह भी अभिप्राय दिया। अरे, बेकार में क्यों अभिप्राय देता रहता है! तेरे सर्टिफिकेट को कोई बाप भी पूछने वाला नहीं है। यह तो बेटा भी विरोधी बन जाता है। जब तक अच्छा कहे तब तक अच्छा और खराब कहने पर बेटा मन में सोचता है कि 'बेकार में सिर दर्द करते हैं, दिमाग़ खराब करते हैं।' और मन में समझता है कि 'बरकत नहीं है इसलिए ऐसा बोलते हैं।'

अभिप्राय एक ही प्रकार का रखना

एक पढ़ा-लिखा पिता अपने बेटे को कितने अभिप्राय देता होगा? अनपढ़ कम देता है लेकिन पढ़े-लिखे बुद्धिशाली लोग अपने बेटे को कितने अभिप्राय देते होंगे?

प्रश्नकर्ता : बहुत अभिप्राय देते हैं।

दादाश्री : बेटा घड़ी भूल आया। उससे पूछे 'घड़ी कहाँ गई?' तब कहता है, 'भूल गया।' तब पिता क्या कहेगा? 'पहले से ही मूर्ख है, कहेगा। तुझमें बरकत ही नहीं है', ऐसा कहेगा। अब, तीन घंटे के बाद एक अच्छा काम करके आया। तब फिर से कहेगा, 'बहुत समझदार इंसान है, बहुत समझदार।' अरे भाई, मूर्ख क्यों कहा था और वापस समझदार क्यों कह रहा है? इसे प्लस-माइनस करके तो देख। इसे छोड़कर देख। एक ही प्रकार का अभिप्राय रख न, भाई। अभिप्राय एक ही प्रकार का होना चाहिए। आप क्या कहते हो?

प्रश्नकर्ता : ठीक है, एक प्रकार का अभिप्राय।

'ज्ञानी पुरुष' का कैसा सिद्धांत!

दादाश्री : मेरे पिता अभिप्राय नहीं बदलते थे। उसमें से मैंने यह एक बड़ी बात सीखी। नया सर्टिफिकेट नहीं देता और दिए हुए में बदलाव नहीं आता।

जब मैं छोटा था तब जो अभिप्राय दिए थे न, वे अभी तक नहीं तोड़े। अर्थात् क्या कि एक पेड़ को पानी पिलाकर बड़ा करें और फिर कोई कहे कि, 'रास्ता बनाना है इसलिए पेड़ काट दो।' तो ये कहेंगे, 'ठीक है, काट दो।' ऐसा तो कहीं होता होगा? तो फिर उगाया किसलिए? अभिप्राय तो पानी पिलाकर उगाए गए पेड़ जैसा

है, उसे तोड़ना चाहिए क्या? तब कहना चाहिए 'तेरा रास्ता एक तरफ से निकाल। मेरा पेड़ नहीं काटने दूँगा।' यह तो 25 साल के अभिप्राय को एक घंटे में फ्रैक्चर कर देते हैं। यह तो, मन की स्थिरता नहीं, अंत:करण की स्थिरता नहीं, चित्त की स्थिरता नहीं, ऐसे लोग हैं। फिर उनके जो अभिप्राय हैं, वे कैसे होंगे?

मेरा तो पहले से ही सिद्धांत है कि मैंने जिस पौधे को पानी पिलाकर बड़ा किया हो तो वहाँ से मुझे रेल्वे लाइन भी ले जानी हो तो उसके पास से मोड़कर ले जाऊँ, परंतु मेरा उगाया हुआ पौधा नहीं उखाड़ूँ! सिद्धांत होना चाहिए। एक बार स्थापित करने के बाद फिर खंडन कभी भी नहीं करते। खंडन की बात तो कहाँ रही, परंतु आप मिले हो तब से आपके लिए जो अभिप्राय बनाया है, मेरा वह अभिप्राय एक सेकन्ड के लिए भी बदलता नहीं है! आज मैं तय करूँ कि 'यह व्यक्ति अच्छा है', फिर यदि उस व्यक्ति ने मेरी जेब में से पैसे लिए हों और कोई व्यक्ति उसका का प्रमाण दे कि मैंने खुद उसे चोरी करते हुए देखा है, तब भी मैं कहूँगा कि 'यह चोर नहीं है।' क्योंकि हमारी समझ अलग है। वह व्यक्ति हमेशा के लिए कैसा है, वैसा हमने देख लिया है, फिर संयोगवश वह व्यक्ति चाहे जो करे, उसकी हम *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना) नहीं करते। पूरा जगत् संयोगवश की *नोंध* करता है।

'ज्ञानी' का दर्शन सर्वांगी

यह *नोंध* (दर्ज करना) लेना बहुत अलग चीज़ है। यह जो मैं कहता हूँ वह बात ऐसे मेरी समझ में आ जाती है, लेकिन उसे आपको दिखाना ज़रा मुश्किल लगता है। मैं भी कुछ लोगों से कहता ज़रूर हूँ कि *नोंध* मत रखना, और वे फिर समझ भी जाते हैं कि 'इसकी *नोंध* रखी इसलिए गड़बड़ हुई।' हम कोई भी *नोंध* नहीं रखते। ये सारी अवस्थाएँ खड़ी होती हैं, लेकिन *नोंध* नहीं रखते।

प्रश्नकर्ता : आप क्या देखते हैं उस समय?

दादाश्री : हम 'होल फोटोग्राफी' लेते हैं। 'यह अकेला ही दौड़ रहा था,' ऐसी *नोंध* नहीं रखते।

प्रश्नकर्ता : वह 'होल फोटोग्राफी' में वह दौड़ ही रहा होता है न?

दादाश्री : वैसा अंदर रहता ही है, लेकिन 'होल फोटोग्राफी' लेते हैं।

सिर्फ, हेतु ही देखने जैसा

मैं तो कितने ही सालों से अभिप्राय नहीं बाँधता। इन सभी के लिए तो बाँधे हैं, सभी के लेवल, लेकिन उन अभिप्रायों को मैंने कभी भी नहीं बदला। किसी भी संयोग में नहीं बदलता।

यह व्यक्ति कभी कोट की जेब में से दो सौ रुपये निकाल दे, वह मेरे सामने एक्सेप्ट नहीं करे, और तब कोई बताए कि 'इस व्यक्ति ने दो सौ लिए हैं,' तो मैं उसे खराब नहीं कहूँगा। संयोग ऐसे रहे होंगे, ऐसा समझूँगा। संयोगवश हुआ। इस पाटीदार के घर में ऐसा नहीं होता और यदि हुआ है तो कोई कारण रहा होगा। नेसेसिटी हैज़ नो लॉ (ज़रूरत के लिए कोई नियम नहीं होता। हेतु ही देखा जाता है। चोरी या बदमाशी तो आँखों वाले देखते हैं, बाकी हेतु ही देखा जाता है। उसे फीस भरनी होगी इसलिए चोरी की। यदि उसे फीस नहीं भरनी होती तो चोरी क्यों करता?

हम किसी प्रकार का ओपिनियन नहीं देते। हमारा ओपिनियन एक ही प्रकार का, यदि एकाध बार यह भाई मिल जाए तो फिर हम ओपिनियन नहीं बदलते। एक ही प्रकार का अभिप्राय! उसके

बाद वह चोरी करे, बदमाशी करे, परेशान करे लेकिन हम ओपिनियन नहीं बदलते।

अभिप्राय नहीं बदलने की दृष्टि

खुद भगवान आकर हम से कहें फिर भी मैं नहीं माँनूगा। खुद भगवान आकर कहें, कि 'आपको ऐसा हो जाएगा, आप ऐसे हो, आप वैसे हो, तो मैं नहीं मानूँगा।'

क्योंकि मेरे पास ये सभी... लगभग दस से बारह हज़ार तो नियमित लोग हैं और बाकी, उनके सारे रिश्तेदार आते हैं, पचास हज़ार लोग आते हैं लेकिन उन सभी में से किसी के लिए भी मैंने अभिप्राय नहीं बदला है। 40 साल पहले जो नोट (नोंध) किया, आपको वहाँ देखा, तब जो पहला अभिप्राय पड़ा, फिर उस अभिप्राय को बदलना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बाहर से तो अलग दिखाई देता है।

दादाश्री : वह चाहे जितना भी अलग हो, हम समझ जाते हैं कि भाई, यह तो संयोगाधीन है। लेकिन अभी तक हमने किसी के लिए भी अभिप्राय नहीं बदला। ये नीरू बहन 20 साल से मेरे साथ हैं लेकिन इनके लिए अभिप्राय नहीं बदला। एक सेकन्ड के लिए भी अभिप्राय नहीं बदला।

प्रकृति को पहचानने के लिए चाहिए निष्पक्षपाती हार्ट

अर्थात् मुझ में प्रकृति देखने की शक्ति ज़्यादा दी गई है, कुदरती गिफ्ट ही ऐसी है! प्रकृति देख लेनी है, और हर एक की प्रकृति अलग ही होती है।

प्रश्नकर्ता : वह अलग ही होती है। वह तो समझ में आता है लेकिन क्या हम ठीक से देख सकते हैं?

दादाश्री : उसके लिए ऐसा निष्पक्षपाती होना चाहिए। ऐसा हार्ट (हृदय) रहना चाहिए न! निष्पक्षपाती नहीं रहता न!

कोई भी व्यक्ति जब हमारे यहाँ आता है तब, जब तक मैं बार-बार उसका नाम नहीं पूछ लेता, तब तक मैं उसके लिए अभिप्राय नहीं बनाता। फिर जब नाम पूछना बंद कर देता हूँ तब मेरा अभिप्राय बन चुका होता है।

यह आपको पता होगा, आपसे नाम पूछता था न पहले? कभी भी कोई आए तब मैं क्या करता हूँ कि, 'भाई आपका नाम क्या है,' ऐसा पूछता हूँ। तब ये कहते, 'चंदूभाई।' फिर मैं वापस भूल जाता हूँ। फिर जब वापस आए, तब यदि मुझे उनका नाम याद रहे तब अभिप्राय बन चुका होता है कि, 'भाई, यह व्यक्ति ऐसा ही है।' बस, अन्य कोई झंझट नहीं। थोड़े समय स्टडी (अभ्यास) कर लेते हैं।

एक बार बनाया हुआ अभिप्राय नहीं बदलता हूँ

प्रश्नकर्ता : आप यह जो सभी की स्टडी करते हैं, वह आप रियल में रहकर करते हैं या यह सब रिलेटिव में ही करनी होती है?

दादाश्री : मेरा दर्शन ही अनावृत करता हूँ, अनावृत दर्शन, दर्शन से जो दिखाई देता है, निष्पक्षपाती दर्शन, फिर उसके लिए अभिप्राय नहीं बदलना पड़ता। यह आपके लिए जो अभिप्राय बंध गया है, उसमें कुछ नहीं बदलता। कोई कहे, 'चंदूभाई ने ऐसा किया।' लेकिन वह कुछ मानने में नहीं आता। फिर दखल ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : आपका यह अभिप्राय दर्शन से आया हुआ है? सोच समझकर नहीं आया?

दादाश्री : हाँ। वर्ना फिर अभिप्राय बार-बार बदल जाते। जो कान का कच्चा हो, उसका

अभिप्राय अभी ऐसा हो, वह बाद में यों बदल जाता है। ऐसे अभिप्राय का क्या करना है? और वह अभिप्राय डर भी कितना बैठा देता है!

प्रश्नकर्ता : हम सभी के लिए अभिप्राय बाँधते हैं। उसमें सभी के गुण और दोष देखते हैं, तो दोष पहले दिखाई देते हैं, ऐसा क्यों होता होगा?

दादाश्री : ऐसा है कि जब तक उसका पुण्य रहता है तब तक वह सभी को अच्छा दिखाई देता है और जब पाप का उदय बरतता है तब इन सभी के अभिप्राय बदल जाते हैं। लेकिन मैं अभिप्राय नहीं बदलता। वह तो पुण्य और पाप के अधीन बरतता रहता है, उसमें मैं अभिप्राय नहीं बदलता। मैं तो पुण्य में उसका अभिप्राय देख लेता हूँ, वह अभिप्राय रहने देता हूँ। फिर पाप के अधीन चाहे कुछ भी हो जाए! अत: फिर दखल भी नहीं और मतभेद भी नहीं होता न!

ज्ञानी, प्रकृति को पहचान कर काम लेते हैं

इस कलियुग में एक ही घर में अलग-अलग पौधे होते हैं। यानी कि घर बगीचे जैसा हो गया है। लेकिन अगर देखना ही नहीं आता तो उसका क्या हो सकता है? उससे दु:ख ही होगा न! जगत् के पास यह देखने की दृष्टि ही नहीं है। बाकी, कोई भी खराब नहीं है। ये मतभेद तो खुद के अहंकार की वजह से हैं। जिन्हें देखना नहीं आता है, उन्हें अहंकार है। मुझे अहंकार नहीं है, इसलिए मुझे सारे संसार में किसी से मतभेद ही नहीं होता है। मुझे देखना आता है कि यह 'गुलाब' है, यह 'मोगरा' है, यह 'धतूरा' है, यह कड़वी 'कुँदरू' का फूल है। ऐसा सब मैं पहचानता हूँ। यानी बगीचे जैसा हो गया है। यह तो तारीफ के लायक हुआ न? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : ऐसा है न कि प्रकृति नहीं बदलती। वह तो वही का वही माल है, वह नहीं बदलती है। हम प्रत्येक प्रकृति को जान चुके हैं, इसलिए तुरंत पहचान लेते हैं। इसलिए हम हर एक के साथ उसकी प्रकृति के अनुसार रहते हैं। अगर हम सूर्य के साथ दोपहर बारह बजे दोस्ती करेंगे तो क्या होगा? इस प्रकार यदि हम समझ लेंगे कि 'यह ग्रीष्म का सूर्य है, यह जाड़े का सूर्य है', फिर क्या कोई कठिनाई होगी?

हम प्रकृति को पहचानते हैं, इसलिए आप टकराना चाहो तो भी मैं टकराने नहीं दूँगा, मैं खिसक जाऊँगा। वर्ना दोनों का एक्सिडेन्ट हो जाएगा और दोनों के स्पेयर पार्ट्स टूट जाएँगे। किसी का बंपर टूट जाए तो भीतर बैठे हुए की क्या हालत होगी? बैठने वाले की तो दुर्दशा हो जाएगी न! इसलिए प्रकृति को पहचानो। घर में सभी की प्रकृतियों को पहचान लेना है। प्रकृति को पहचानकर उससे काम लेना चाहिए।

किसी का भी दोष दिखाई दे, वह अपना ही दोष हैं

सामने वाले की प्रकृति को पहचान जाएँ तो उसके साथ वीतरागता रहती है कि यह गुलाब का पौधा है और काँटे लग रहे हैं, तो गुलाब में काँटें होते ही हैं ऐसा पक्का हो जाता है। उसके बाद काँटों पर गुस्सा नहीं आता। अगर हमें गुलाब चाहिए तो काँटे सहने ही पड़ेंगे। प्रकृति की पहचान होना, वह ज्ञान है और ज्ञान हो गया तो वर्तन में आएगा ही, बस।

अर्थात् अगर प्रकृति को हम पहचान गए कि इस व्यक्ति में यह गुण है तो फिर उसके साथ वीतरागता रहेगी। हम जानते हैं कि यह इसका दोष नहीं है, यह तो उसकी प्रकृति ही ऐसी है! अत: अगर किसी का भी दोष दिखे तो

वह अपना ही दोष है। अपना विज्ञान ऐसा कहता है कि 'किसी भी व्यक्ति का दोष दिखे तो वह आपका ही दोष है। आपके दोष की वजह से यह रिएक्शन आया है।'

शुद्धात्मा और लट्टू, सिर्फ ये दो ही हैं

'प्रकृति लट्टू स्वरूप है।' लट्टू यानी क्या? डोरी लिपटती है, वह सर्जन, डोरी खुले, तब घूमता है, वह प्रकृति। डोरी लिपटती है, तब कलात्मक ढंग से लिपटती है, इसलिए खुलते समय भी कलात्मक ढंग से ही खुलेगी।

देखो हम भादरण जाकर आ गए न। रिश्तेदारों के साथ विषमता नहीं की। नहीं? गाँव में से एक-दो लोग नहीं आए, जो विरोधी हैं वे। बल्कि उन दोनों ने क्या किया? लोगों के वहाँ जाकर कह आए कि 'दादा भगवान आए हैं, सुना क्या?' एक व्यक्ति ने कहा भी सही कि, 'बल्कि आपका प्रॉपगेन्डा (प्रचार) कर देंगे'। हाँ, यह तो हर जगह कह आए, 'दर्शन-वर्शन करने मत जाना'। और वही लोग वहाँ पूरे गाँव में उल्टा-सुल्टा गाते रहे। यह जगत् तो ऐसा ही है! यदि वह हम से मिले तो हमें उसके लिए अभिप्राय नहीं रहता। वह मिले तो उसे पता नहीं चलेगा कि 'इन्हें मेरी बात पता है।' क्योंकि उसके लिए क्या अभिप्राय रखना? जब वह ही लट्टू है। शुद्धात्मा और लट्टू, दो ही। और है ही क्या?

लट्टू के लिए अभिप्राय कैसा?

फिर भी जब वह मिलता है तब उसे ऐसा नहीं लगता कि हम से अलग है। क्योंकि हमें जुदाई है ही नहीं। वह बेचारा लट्टू है। लट्टू के लिए अभिप्राय कैसा? उसके हाथ में सत्ता नहीं है, संडास जाने की भी सत्ता नहीं है। वह जो कुछ भी कर रहा है, उसमें सारा मेरा ही हिसाब दिखा रहा है। हाँ, उसमें उस बेचारे की सत्ता है ही नहीं न! वह शुद्धात्मा है और उसके शुद्धात्मा को हमारा नमस्कार है। और अन्य कोई उसकी सत्ता ही नहीं है। जिसके पास सत्ता ही नहीं है, यदि उसे गुनहगार मानें तो हम मूर्ख कहलाएँगे। जिसकी संडास जाने की सत्ता नहीं है, उसे कहें कि 'तुम संडास क्यों नहीं गए'? ऐसा कहेंगे तो हम गुनहगार कहलाएँगे न।

प्रश्नकर्ता : हाँ, कहलाएँगे।

दादाश्री : इसी तरह इस लट्टू के हाथ में सत्ता ही नहीं है। जबकि ये कहते हैं, 'नगीन ने ऐसा किया? मगन ने ऐसा किया? उस छगन ने ऐसा किया?' 'नहीं भाई, तेरा ही हिसाब है यह'। ये तो लट्टू हैं। अत: किसी व्यक्ति पर ज़रा भी शंका नहीं रखनी चाहिए। वह खुद ही लट्टू है, वह क्या कर सकता है?

जितना चित्रांकन किया है उतनी जगहों पर लट्टू घूमेगा। हम तय करें कि लट्टू ऐसे इस कोने में घूमे तो अच्छा। लेकिन वह उस कोने में जाकर घूम आता है। क्योंकि हिसाब के अनुसार घूमेगा न! वह विरोधी बनकर भी यदि 'दादा' बोलेगा न, तब भी कहते हैं कि उसका कल्याण होगा!

मूल आकर्षण तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही

अपने महात्माओं पर अभाव होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : ऐसा! पहले महात्माओं के लिए अभाव चला जाए तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं के लिए ऐसा नहीं रहना चाहिए कि अपने महात्मा ऐसे ही होने चाहिए?

दादाश्री : 'ऐसे ही होने चाहिए', ऐसा नहीं। लेकिन, 'अपने महात्मा ज्ञान में ही होने

चाहिए। अत: इस तरह के होने चाहिए', ऐसा नहीं रखना है। यदि महात्मा ज्ञान में हैं और मन उल्टा-सीधा बोले तब भी उनके लिए अभिप्राय नहीं देना चाहिए।

यहाँ सत्संग में, अपने सर्कल में जो लोग आपको मिलेंगे न, वे आपको सेट हो जाएँ वैसे ही मिलेंगे। और ऐसे मिलेंगे जो सेट नहीं होंगे, उनका मिलना अनिवार्य था। वह तो है ही अनिवार्य, फिर झंझट क्या है हमें? और वह तो अपने आप छूट ही जाएगा। आपको उसे छोड़ना नहीं पड़ेगा। क्योंकि अपने यहाँ सारा उच्च प्रकार का माल खिंचकर आता है। भले ही पैसे कम-ज़्यादा हो उसका सवाल नहीं है लेकिन जिनमें कुछ सिन्सियरिटी और मॉरेलिटी बची हुई हैं, वैसे लोग ही अपने यहाँ आते हैं। यह एकदम खाली नहीं हो गया है। क्योंकि यह आकर्षण तो 'ज्ञानी पुरुष' का ही है न! ये सभी इकट्ठे हुए उसमें मूल आकर्षण तो 'ज्ञानी पुरुष' का है न! फिर उनके आकर्षण से आप और आपके आकर्षण से बाकी के यहाँ पर आएँगे लेकिन मुख्य तो 'ज्ञानी पुरुष' ही हैं न! और यह सब सिन्सियरिटी व मॉरेलिटी पर ही आधारित है न! और फिर सभी इतने ही सिन्सियर व मॉरल हैं। यदि वह गलत होगा तो वह छूट जाएगा, अपने आप ही छूट जाएगा। कुछ समय बाद, यहाँ छ: महीने या बारह महीने आकर अपने आप ही छूट जाता है।

ज्ञान से रह सकता है, 'एक अभिप्राय'

प्रश्नकर्ता : ऐसा है कि मुझे अभिप्राय नहीं बनाना है लेकिन जो पसंद और नापसंद, दोनों के लिए अभिप्राय बनाते हैं उसमें से नापसंद तो उसके पास अपने आप ही आ पड़े हैं न?

दादाश्री : नापसंद तो अपने आप ही छूट जाएँगे, आपको छोड़ना नहीं पड़ेगा। और जो पसंद हैं वे रहेंगे। तो फिर उनके लिए अच्छे-बुरे अभिप्राय देकर क्या करना है?

अत: जो लोग पसंद नहीं हैं वहाँ पर धीरज रखना चाहिए। वे ही पसंदीदा लोग हैं और वे ही खुद के अपने हैं। नापसंद हो तो एकदम से तोड़फोड़ कर देते हैं, ऐसा नहीं करना चाहिए। इसलिए यदि एक ही अभिप्राय होगा तो वह पसंद-नापसंद, दोनों को ही खत्म कर देगा, निकाल देगा। यदि एक ही अभिप्राय होगा तो झंझट नहीं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के अलावा (और किसी का) वैसा 'एक अभिप्राय' होता ही नहीं है न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन ज्ञानी पुरुष को देखकर और लोग सीख सकते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, सीख सकते हैं।

दादाश्री : ज्ञान तो हुआ ही है न! फिर अभिप्राय बनाने में क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : जो नहीं पसंद, वे अपने खुद के?

दादाश्री : वे ही खुद के। नहीं तो और कौन?

प्रश्नकर्ता : और जो पसंद हैं वे खुद के नहीं हैं, आपका ऐसा कहना है?

दादाश्री : ये सब खुद के ही हैं। इसीलिए पसंद हैं न! नापसंद भी खुद के हैं और नापसंद हुए यानी कि पहले पसंद रहे ही होंगे। अत: इस सब पर लॉंग साइट (दीर्घ दृष्टि) से सोचे, देखे-करे तो व्यक्ति का 'एक अभिप्राय' रह सकता है, वर्ना कैसे रह सकता है?

हम किसी के लिए अभिप्राय नहीं बदलते। हमने उसकी एक ही थ्योरी देख ली, कि भाई, इस अनुसार है, अत: फिर अन्य कोई बदलाव नहीं करना। एक ही प्रकार की दृष्टि रहती है। आप उल्टा-सीधा बोलो तो भी मुझे हर्ज नहीं है, फिर

भी मेरी दृष्टि आपके लिए नहीं बदलेगी। अभी तक किसी के लिए दृष्टि नहीं बदली है। पचास हज़ार लोगों में से किसी के लिए भी नहीं बदली है और अभिप्राय तो हम किसी के लिए भी नहीं रखते। प्रेजुडिस भी नहीं और अभिप्राय भी नहीं।

फरियादी को पछतावा होता है, दादा के समक्ष

प्रश्नकर्ता : कुछ लोगों के लिए अपने मन में पूर्वग्रह है। सभी के लिए ऐसा नहीं होता।

दादाश्री : मुझे पूर्वग्रह नहीं होता न! मुझे किसी प्रकार का पूर्वग्रह नहीं होता न! सामान्य इंसान को पूर्वग्रह होगा ही। मुझे तो यह ज्ञान होने से पहले पूर्वग्रह थे। ज्ञान होते ही सब चले गए! पूर्वग्रह रखा यानी इंसान खत्म हो गया! फिर खुद ही ग्रहित हुआ इंसान हमें किस काम आएगा? खुद ग्रहित हुआ कहलाएगा।

अभिप्राय, वही पूर्वग्रह है। वह पूर्वग्रह का फल है। हमारा कोई अभिप्राय नहीं बदलता किसी के भी लिए। क्योंकि हमें पूर्वग्रह है ही नहीं। फिर वह हमारा अभिप्राय कैसे बदलेगा?

यात्रा में आकर आपने उल्टा-सीधा किया, हमें वह नहीं देखना है। उस दिन आप मुझसे मिले, उतना ही देखना है। बाकी का सारा इतिहास देखने नहीं आए, यहाँ कम्पेयर या कॉन्ट्रास्ट नहीं करते हैं। हमें तो दोबारा अभिप्राय उत्पन्न ही नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय एक ही तरह का होता है।

दादाश्री : आपके लिए यदि शिकायते आएँ तो भी मैं नहीं मानूँगा। शिकायते करने वाले भी सोचेंगे कि दादा से कहाँ शिकायत की, ये तो सुनते ही नहीं हैं और कुछ ध्यान भी नहीं देते! तो उस बेचारे को पछतावा होता है!

कल्याण के लिए चाहिए पूर्वग्रह रहित दशा

सामने वाला यदि टेढ़ा बोले तो हम उसे समझाकर उससे काम लेते हैं। वह आपसे नहीं समझता, उसका क्या कारण है कि आपको प्रेजुडिस है। हमें तो ऐसा दिखाई ही नहीं देता कि यह गलत कर रहा है। हमें उसके लिए अभिप्राय ही नहीं रहता। इसीलिए हम सामने वाले को समझा सकते हैं।

यानी कि हम पूर्वग्रह नहीं रखते। हम उस व्यक्ति को बार-बार बातचीत करने देते हैं। हम समझ जाते हैं कि 'देखो, इसमें यह है'।

यदि मनुष्य पूर्वग्रह रहित हो जाए तो कल्याण ही हो जाएगा। यदि कल आप मुझसे झगड़ा करके गए हों न, तो आप जब अगले दिन आओ तब मैंने कल की बात एक ओर रख दी होती है। यदि पूर्वग्रह रखूँ तो वह मेरी भूल है। फिर भले ही आप अगले दिन भी वैसा ही करो, उसमें हर्ज नहीं है।

जैसा देखोगे आप वैसे ही बन जाओगे

यदि कल कोई कोट में से चुरा ले गया हो, फिर भी हमें ऐसा नहीं रखना चाहिए कि आज भी चुरा ले जाएगा। पर हमें सिर्फ कोट सुरक्षित जगह पर रख लेना चाहिए। सावधानी रखनी चाहिए हमें। पिछले दिन कोट यदि बाहर रखा था तो आज ठिकाने पर रख देना चाहिए लेकिन प्रेजुडिस नहीं रखना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो पूर्वग्रह है, वह जब तक निर्दोष दृष्टि नहीं होती तब तक नहीं जाता न?

दादाश्री : नहीं जाता। इसीलिए हम कहते हैं न, कि यह ज्ञानियों का ही काम है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी किस प्रकार से पूर्वग्रह छोड़ते हैं, दादा?

दादाश्री : उसका प्रकार नहीं होता। उनके ज्ञान में वैसा बरतता ही है कि, 'आज उसके उदय कैसे होंगे, वह कहा नहीं जा सकता'। और यह तो ऐसा ही मानता है कि 'ऐसा ही उदय आता है।' ऐसा मानते हो, उसी को पूर्वग्रह कहते हैं। कोई व्यक्ति पूछे, 'तब क्या हमें पूर्वग्रह नहीं रखना चाहिए?' तब मैं कहूँ, 'पूर्वग्रह मत रखना। सावधानी रखना। अपना कोट अंदर रख देना लेकिन उसके प्रति पूर्वग्रह छोड़ देना। अगर शायद वह वैसा निकले तो आपका कोट तो अलग रख दिया है तो फिर वह कैसे ले जाएगा?'

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : उसके प्रति पूर्वग्रह रखने के बजाय हम सावधानी रखकर चलें, उसमें क्या गलत है? और हम तो सावधानी रखने की बात ही नहीं करते। कभी न कभी तो दे ही देना है न, यदि हमारे सामने ही ले जाए तो उसमें क्या गलत है? कभी न कभी सब लौटा नहीं देना है? फिर अपने सामने ले जाए तो हमें क्या? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : बहुत भारी बात है, दादा।

दादाश्री : भगवान क्या कहते हैं? निष्पक्षपाती से हम पूछें कि 'साहब, आपका क्या कहना है?' तब वे कहेंगे, 'वह आपकी दृष्टि में चाहे जो हों, पर वे अपनी जगह पर सही हैं।' तब कहे, 'चोर चोरी करता है वह?' तो, 'वे अपनी जगह पर सही हैं। आप किसलिए अक्लमंदी करते हो? आप सिर्फ उसे निर्दोष दृष्टि से देखो। आपके पास यदि निर्दोष दृष्टि हो तो उससे आप देखो। वर्ना और कुछ मत देखना! और कुछ देखोगे तो मारे जाओगे। जैसा देखोगे आप वैसे ही बन जाओगे'। क्या गलत कहते हैं? ये वीतराग सयाने हैं न!

सब से अंतिम दृष्टि वीतरागों की

वीतरागों की दृष्टि कैसी! उन्होंने किस दृष्टि से देखा कि जगत् निर्दोष दिखाई दिया!! हम वीतरागों से पूछें कि साहब, 'आपने तो कैसी आँखों से ऐसा देखा कि यह जगत् आपको निर्दोष दिखाई दिया?' तब वे कहेंगे, 'वह ज्ञानी से पूछना, हम आपको जवाब देने नहीं आएँगे।' डिटेल में, ब्यौरेवार ज्ञानी से पूछना। जो मैंने देखा वह उन्होंने तो देखा ही है, पर मैंने भी वह देखा!

वह व्यक्ति आपको इसलिए गुनहगार दिखाई देता है क्योंकि आप मानते हो कि इस व्यक्ति ने सर्जन किया है। जेब काटने का सर्जन किया। पूरा संसार ऐसा मानता है, सिर्फ आप ही नहीं मानते। अब मेरी भाषा में क्या है? यह विसर्जन है, यह कुदरत का विसर्जन है! उसका भी नहीं है बेचारे का, कुदरत का विसर्जन है। कुदरत विसर्जन करवाती है। उस विसर्जन में उसे जेब काटना आया है।

सारा संसार जो कुछ भी करता है, वह सब कुदरती विसर्जन ही है। फिर भले ही आप जप करो या तप करो लेकिन सबकुछ कुदरती विसर्जन है। सर्जन पहले हो चुका है। सर्जन में खुद निमित्त बनता है जबकि विसर्जन में खुद का कोई हाथ नहीं है, वह कुदरत का ही है। यह सब कुदरती विसर्जन है। वह आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। समझ में आया।

दादाश्री : तो फिर कुदरती विसर्जन में उसका क्या गुनाह है? वह यदि फूल चढ़ाता है तो उसका क्या उपकार और जेब काटता है उसका क्या अपकार? जहाँ कुदरत का ही विसर्जन है वहाँ। सारा संसार जो कुछ भी कर रहा है, वह कुदरत का विसर्जन है। हमें जितना दिखाई दिया उतना हम कभी-कभी इस तरह आपके सामने अनावृत करते हैं।

वीतरागों को जिस दृष्टि से दिखाई देता है, वही दृष्टि हमारी है। अंतिम दृष्टि! इसे कोई सुधार

नहीं सकता। हम जो वाक्य बोलते हैं न, उसे कोई कैन्सल नहीं कर सकता वर्ल्ड में, कभी भी, लाखों सालों बाद भी! अत: फिर वह हमेशा के लिए फैक्ट चीज़ हुई न!

हमारी दृष्टि से जो देखा है, वह हम बता रहे हैं। यानी कि फूल चढ़ाने वाले पर हमें राग नहीं और कोई गाली दे तो उस पर द्वेष नहीं। हम जानते हैं कि यह किसका विसर्जन है! जिस दृष्टि से हम देखते हैं उससे आगे कोई दृष्टि है ही नहीं। हमने जो ज्ञान जाना है उससे आगे कोई ज्ञान है ही नहीं। यह सब से अंतिम विवरण है। तो कभी-कभार खुलासा कर देते हैं।

समझो ज्ञानी की पक्की जागृति

मेरा निबेड़ा कब आया जानते हो? मुझे ऐसा लगा कि इन लोगों का दोष ही नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा तो मैंने न्याय किया कि, 'इन लोगों ने ही गलती की है'। ये ऐसे ही हैं। वही मेरा पूर्वग्रह था। देखो, न्याय में फिर अन्यायी बने क्योंकि उनका दोष नहीं है। ऐसा मानना गलत था। मुझे नहीं मानना चाहिए था। वे भले ही दोषित हों। वह तो, जब हिसाब लगाएँगे तभी निकलेगा न? वास्तव में वे दोषित हों फिर भी मुझे नहीं मानना चाहिए। वे दोषित हैं ऐसा क्यों मानना चाहिए। मैं कौन होता हूँ न्यायाधीश? यह सारी झंझट है जबकि मेरी जागृति तो पक्की जागृति है! अत: मेरी भूल से हुआ है, उसकी भूल नहीं है।

अभिप्रायों के कारण रुका हुआ है आत्मानुभव

अभिप्राय तो पकड़ हैं। अभिप्राय ढूँढेंगे तो मिलेगा नहीं। *'सघळुं करता स्व नहीं करता'* (सबकुछ करते हुए भी खुद किसी का कर्ता नहीं होते है), इस सूत्र को सिर्फ जानने से कुछ नहीं होगा। उसे समझना पड़ेगा। इस अंदर की पकड़ को देखना, वह सूक्ष्म चीज़ है तभी अभिप्राय टूटेगा।

अभिप्राय के कारण, जैसा है वैसा देखा नहीं जा सकता, मुक्त आनंद का अनुभव नहीं होता क्योंकि अभिप्राय का आवरण है। जब अभिप्राय रहेंगे ही नहीं, तब निर्दोष हो पाएँगे। स्वरूप ज्ञान के बाद अभिप्राय होने के बावजूद भी आप मुक्त कहलाते हो लेकिन महामुक्त नहीं कहलाते। अभिप्राय के कारण ही अनंत समाधि रुकी हुई है।

अभिप्राय, वह तो पहले का करार है। उस करार को फाड़ने के बाद क्रिया करनी चाहिए। लेकिन इसमें तो जो छिपा अभिप्राय रहता है उसका पता ही नहीं चलता। यदि पुलिस वाला पकड़कर ले जाए तो अच्छा लगेगा? नहीं। वहाँ कैसा अभिप्राय रहता है? 'वह ले जाता है, वह अच्छा नहीं है'। बस, उसी प्रकार ज्ञान के बाद जो भी सांसारिक क्रियाएँ होती हैं वहाँ अभिप्राय नहीं रहना चाहिए।

जन्म से मृत्यु पर्यंत 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के हाथ में हैं, तो अभिप्राय रखने की ज़रूरत ही कहाँ है? स्वरूप ज्ञान मिलने के बाद ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध प्राप्त होने के बाद जो दो-पाँच अभिप्राय पड़े हुए हैं उन्हें निकाल देंगे, तो विद ऑनर्स (सम्मान सहित) पास हो जाएँगे हम!

जब तक, ऐसा कहा जाता है कि, 'करना पड़ता है' तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन जब तक ऐसा अभिप्राय रहता है तब तक आत्मा पूर्ववत् नहीं बन सकता। निजी तौर पर अंदर ऐसा अभिप्राय रहता है कि, 'किए बगैर हो ही नहीं सकता'। जब तक वह नहीं जाएगा तब तक 'व्यवस्थित' पूर्ण रूप से समझ में नहीं आ सकता। यह बात सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है। समझ लेगा तो काम निकाल देगा। अभिप्राय की वजह से तो आत्मा का पूरा अनुभव रुका हुआ है!

- जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्यश्री दीपकभाई के सत्संग कार्यक्रम - लाइव वेबकास्ट द्वारा इन्टरनेट से

परम पूज्य दादा भगवान का 113वाँ जन्मजयंती महोत्सव

26-28 नवम्बर	सुबह 8 से 9	**सत्संग**
	रात 8-30 से 10	**सत्संग**
29 नवम्बर	सुबह 8 से 9-30	**जन्मजयंती दिवस - विशेष कार्यक्रम**
	रात 8-30 से 10	**जन्मजयंती दिवस - विशेष कार्यक्रम**
30 नवम्बर	सुबह 8 से 9	**सत्संग**
	रात 8-30 से 10	**सत्संग**

दिसम्बर सत्संग पारायण (आप्तवाणी-14 भाग-2)

26-27 दिसम्बर	सुबह 10 से 12	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
28 दिसम्बर से 1 जनवरी	सुबह 8 से 9	**वाचन**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
2-3 जनवरी	सुबह 10 से 12	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**
	रात 8-30 से 10-30	**वाचन तथा प्रश्नोत्तरी**

नोट : आप्तवाणी - 14 भाग-2 गुजराती बुक का पेज नंबर 122 से वाचन होगा।

[उपरोक्त कार्यक्रमों में समय-संजोग के अधीन परिवर्तन हो सकता है।]

विशेष निवेदन

कोरोना वायरस महामारी की वर्तमान परिस्थिति में पूज्यश्री दीपकभाई की निश्रा में सार्वजनिक तौर पर सत्संग कार्यक्रम स्थगित है। भविष्य में महामारी की परिस्थिति सामान्य होने के बाद कार्यक्रम आयोजित होंगे। महात्माओं को सूचित किया जाता है कि महेसाणा में आयोजित जन्मजयंती महोत्सव महात्माओं की हाजिरी में मनाना संभव नहीं हो पाएगा। वर्तमान आयोजन अनुसार इन्टरनेट के माध्यम से ओनलाइन सत्संग तथा उत्सव मनाना जारी रहेगा।

'दादावाणी' के सदस्यों के लिए सूचना

हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में दादावाणी पत्रिका हर महिने 15वी तारीख को पोस्ट की जाती है। जिन महात्माओं को 'दादावाणी' पत्रिका विलंब से या तो अनियमित रूप से मिलती है, वे पूर्व प्राप्त पत्रिका के कवर पर अपना नाम, पता, पीनकोड आदि जाँच कर लें। यदि उसमें कोई भूल हो तो आपका ग्राहक नं, पूरा नाम-पता, पीनकोड के साथ लिखकर मोबाईल नं. 8155007500 पर SMS करें। आप अडालज त्रिमंदिर के पते पर पत्र से या dadavani@dadabhagwan.org पर इ-मेइल से भी सूचित कर सकते हैं। जिससे आपकी यहाँ दर्ज की गई जानकारी में सुधार किया जा सके। यदि आपको दादावाणी का अंक न मिले तो उपर दिए गए कोई भी माध्यम से हमें सूचित करें। यदि अंक स्टोक में होगा तो आपको फिर से भेजा जाएगा।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई:** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा:** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** (079) 27540408, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली:** 9810098564, **बैंगलूर:** 9590979099, **कोलकता:** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 421127947

पूज्य नीरू माँ/पूज्य दीपक भाई को देखिए टी.वी. चैनल पर

भारत

- **'अरिहंत' चैनल** पर हर रोज सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3, और रात 8 से 9 (गुजराती में)
- **'साधना'** पर हर रोज सुबह 7-50 से 8-15 तथा रात 9-30 से 9-55 (हिन्दी में)
- **'वालम' टीवी** पर हर रोज शाम 6 से 6-30 **नया कार्यक्रम** (गुजराती में- सिर्फ गुजरात राज्य में)
- **'उड़ीसा प्लस' टीवी** पर हर रोज सुबह 7-30 से 8 (हिन्दी में- केवल उड़ीसा में)

USA - Canada

- 'TV Asia'- पर रोज सुबह 7-30 से 8 EST
- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 7 से 7-30 तथा 8 से 8-30 EST (हिन्दी में)

U K

- **'बीनस' टीवी** पर हर रोज सुबह 8 से 8-30 GMT (हिन्दी में)
- **'बीनस' टी.वी.** पर रोज सुबह 8-30 से 9 GMT
- **'MA TV'** पर रोज शाम 5-30 से 6-30 GMT
- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 7 से 7-30 Western European Time (6 to 6-30 am GMT)

USA - UK - Africa - Australia

- **'आस्था ग्लोबल'** पर सोम से शुक्र रात 10 से 10:30 IST
  (डिश टी.वी. चैनल **U.K.**-849, **U.S.A.**-719) (गुजराती और हिन्दी में)

Australia

- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 8 से 8-30 तथा दोपहर 1-30 से 2 (हिन्दी में)

Fiji - NZ - Singapore - SA - UAE

- **'Rishtey'** पर हर रोज सुबह 6 से 6-30 तथा 7-30 से 8 (हिन्दी में)

नवम्बर 2020
वर्ष-16 अंक-1
अखंड क्रमांक - 181

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
LPWP Licence No. PMG/HQ/036/2018-2020
Valid up to 31-12-2020
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

ज्ञानी खुद का अभिप्राय किसी पर नहीं थोपते

हमें पहले अपना मत नहीं रखना चाहिए। सामने वाले से पूछना चाहिए कि इसके बारे में आप क्या कहना चाहते हैं? अगर सामने वाला अपनी बात पर अड़ा रहे तो मैं अपनी बात छोड़ देता हूँ। हमें तो यही देखना है कि कैसे भी करके सामने वाले को दु:ख न हो। अपना अभिप्राय सामने वाले पर नहीं थोपना है। हमें सामने वाले का अभिप्राय लेना चाहिए। हम तो सभी के अभिप्राय लेकर 'ज्ञानी' बने हैं। यदि मैं अपना अभिप्राय किसी पर थोपने जाऊँगा तो मैं ही कमज़ोर पड़ जाऊँगा। अपने अभिप्राय से किसी को दु:ख नहीं होना चाहिए।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.